सम्पूर्ण

महारामायण

(महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज कृत)

—:०:—

सम्पादक—

नन्दू भाई

निज़ामाबाद (दक्षिण)

—:०:—

अ० स० सम्पादक—

देवीचरन मीतल

लेखराजनगर, अलीगढ़

—※—

प्रकाशक—

नन्दू भाई प्रधान

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल,

पो० दयाल नगर, अलीगढ़

द्वितीय संस्करण | सर्वाधिकार सुरक्षित | मूल्य ६)प्रति

० शाका १८८५

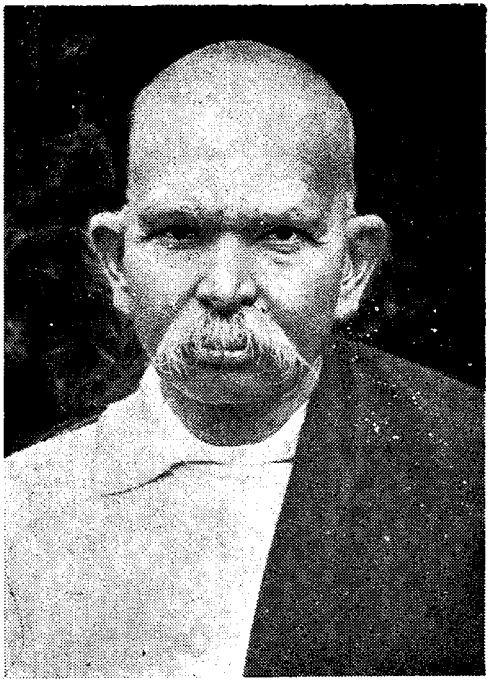

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज

विषय--सूची महारामायण अनुभव खंड (पूर्वार्द्ध)

व आरम्भ खंड बाल चरित्र

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ
	भूमिका	५
	अनुभव खंड (पूर्वार्द्ध)	
पहिला	समुल्लास गरुड़ का संशय	१७
दूसरा	,, ब्रह्मा जी और गरुड़ का संवाद ब्रह्मा और शिवमेंभेद	२१
तीसरा	,, गरुड़ जी और शिवजी का संवाद–गुरु और सत्संग महिमा	२६
चौथा	,, गरुड़ और कागभुशुंडी का मिलाप सुमेरु पर्वत	३३
पांचवां	,, गरुड़ भुशुंडी संवाद (ब्रह्म विषय)	३६
छटा	,, गरुड़ और कागभुशुंडी का संवाद ब्रह्म जगत, ब्रह्ममय जगत, जीव ब्रह्म की एकता	४१
सातवां	,, अवतार विषय (अवतार कैसे होता है)	४७
आठवाँ	,, अवतार विषय (लगातार) राम अवतार	५०
नवाँ	,, अवतार विषय (लगातार) तीन तीन का निर्णय	५५
दसवां	,, अवतार विषय लगातार दश अवतार चरित्र	५७
	आरंभ खंड बाल चरित्र	
	प्रथम भाग	
पहिला	समु० दशरथ का संतति के लिये पुत्र यज्ञ करना	६१
दूसरा	,, संतति उत्पत्ति (राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुहन)	६७
तीसरा	,, राम वशिष्ठ का संवाद (राम का वैराग्य)	७१
चौथा	,, राम का वैराग्य (लगातार)	७५
पांचवां	,, राम और वशिष्ठ का सम्वाद	८२
छटवां	,, राम और वशिष्ठ का सम्वाद (लगातार)	८८
सातवाँ	,, राम और वशिष्ठ का संवाद (नर शरीर सुर को भी दुर्लभ)	९३
आठवां	,, राम वशिष्ठ सम्वाद मनुष्यकी गति उल्टी है	९७
	द्वितीय भाग	
पहिला	समुल्लास विश्वामित्र	

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ
	आगमन	१०३
दूसरा	,, ताड़का वध, मारीच और सुबाहु की ताड़ना	१०७
तीसरा	,, राम और विश्वामित्र का सम्वाद	११२
चौथा	,, राम और विश्वामित्र संवाद (अहिल्या तारण)	११६
पांचवां	,, राम विश्वामित्र का सम्वाद (लगातार) (गङ्गा की कथा)	१२१
छटा	,, राम और विश्वामित्र का सम्वाद (लगातार) (गङ्गा की कथा)	१२६
सातवाँ	,, जनकपुर में आगमन	१३०

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ
	तृतीय भाग	
पहिला	समुल्लास सीताका प्रेम	१३६
दूसरा	,, सीता की उत्पत्ति	१४१
तीसरा	,, सीता स्वयंवर	१५५
चौथा	,, लक्ष्मण का उत्साह जनक कथन	१५०
पांचवाँ	,, राम का शिव धनुष तोड़ना	१५५
छटा	,, परशुराम और लक्ष्मण का सम्वाद	१५७
सातवाँ	,, राम और विश्वामित्र का अन्तिम सम्बाद	१६८
आठवां	,, राम का विवाह	१७१

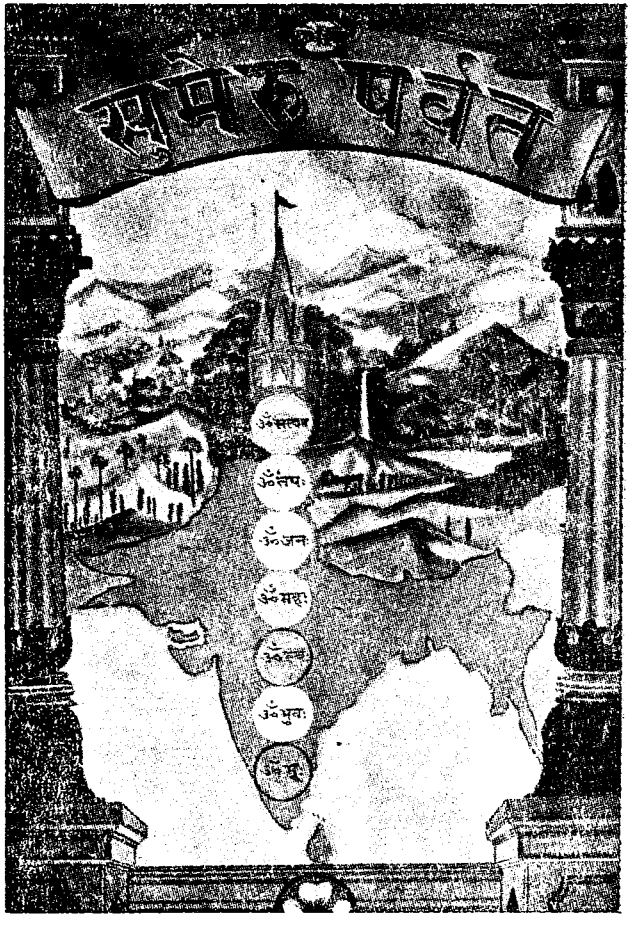
ॐ सत्यम्
ॐ तपः
ॐ जनः
ॐ महः
ॐ स्वः
ॐ भुवः
ॐ भूः

❀ श्री सत्गुरुवेनमः ❀

महारामायण

गरुण और कागभुशण्डी सम्वाद

(सुमेरु पर्वत पर)

भूमिका

रामायण—रामायण बड़ी विचित्र पुस्तक है। इससे अच्छी पुस्तक आज तक किसी ने नहीं लिखी। आगे चलकर कोई लिखेगा कि नहीं, कौन जान सकता है! अब तक सैकड़ों और सहस्रों लिखने वाले हो गये। दिन प्रति दिन जगत में अनेक ग्रन्थ लिखे और छापे जाते हैं और आज कल तो यह हो रहा है कि लिखने वालों की लेखनी उमड़ती हुई बाढ़ की धार के समान रात दिन चला करती है। ग्रन्थों और पुस्तकों का समुद्र झकोले लिया करता है। अगर संसार की सारी पुस्तकों का संग्रह किया जाय, तो हिमालय और विन्ध्या पर्वतों जैसे बड़े बड़े पहाड़ बन जायेंगे, लेकिन रामायण अब तक रामायण है। किसी को यह साहस नहीं हुआ कि इस विलक्षणता का दूसरा ग्रन्थ रच सके।

अनेक रामायण—सबसे पहिले आदि कवि बाल्मीकि ऋषि ने रामायण लिखी। इसके पीछे और कितने ही लिखने वालों ने परिश्रम किया। भारतवर्ष की प्रचलित भाषाओं में

सब जगह रामायणें मिलेंगी। राम नाम महामंत्र बन गया है और जहां देखिये महल, मकान झोंपड़ी मैदान सब जगह गूँजा हुआ सुनाई दिया करता है। ३५० वर्ष के लगभग हुये पवित्र काशी में गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने पूर्वी बोली में अपनी रामायण लिखी। यह सारी रामायणों में सब से अधिक सर्वप्रिय है। बाल्मीकि रामायण के विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता। वह जैसी है वैसी है। संस्कृत में होने के कारण उसके पढ़ने वाले बहुत थोड़े रह गये हैं। तुलसीकृत रामायण का प्रचार सब जगह है। पंडित से लेकर साधारण हिन्दी पढ़े लिखे मनुष्य रात दिन उसे पढ़ते और गाते हैं। उन्हें उससे आनन्द का रस मिलता है और जहां तक मेरा अपना विचार और विश्वास है, सौ में से कम से कम पिचहत्तर पढ़ने वालों का हृदय भक्ति भाव से भर जाता है। यह इस पुस्तक की बहुत बड़ी महिमा है, जो बाल्मीकि कृत रामायण को भी प्राप्त नहीं हुई।

तुलसीकृत रामायण—तुलसीदास जी महाराज रामायण के समुद्र के बहुत बड़े तैराक हैं। वह केवल तैराक ही नहीं हैं बल्कि इस महासागर में गहरी और देर की डुबकी लगाने वाले हैं। जो कोई उनके सन्निकट आ जाता है वह राम की भक्ति के प्रेम जल के छींटों से उसे तरबतर कर देते हैं और किसी किसी को तो इस भक्ति के समुद्र के ऐसे अनमोल मोती मुट्ठी भर भर कर दे देते हैं कि वह अयाच्य (तृप्त) हो जाता है। इस अपूर्व और अद्वैत पुस्तक की जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है।

मेरा पांडित्य—मैं हिन्दी भाषा का पंडित नहीं हूँ। मैंने

हिन्दी में केवल या तो गोस्वामी तुलसीकृत रामायण अनेक बार पढ़ी है या कबीर साहब की साखियों का अवलोकन किया है। अगर इसे पांडित्य कहा जाय तो मैं केवल इन्हीं दो ग्रन्थों का साधारण पठन पाठन करने वाला हूँ। तुलसीदास जी और कबीर साहब की वाणी के अतिरिक्त मैंने हिन्दी में कुछ नहीं पढ़ा और न किसी से मुझे रुचि है।

मेरी अनेक रामायणें मेरी आयु का विशेष भाग पंजाब देश में व्यतीत हुआ। वहां इस रामायण का प्रचार संयुक्त प्रांत और बिहार की तरह नहीं था। मैंने वहाँ इसका प्रचार किया। टीका भी लिखी और जहाँ तक मुझे स्मरण है मैं ने कम से कम उर्दू में कई रामायणें लिखीं। इनमें से मेरी लिखी हुई 'विज्ञान रामायण' को लोगों ने बहुत पसन्द किया। वह भी इसी तुलसीकृत रामायण के आधार पर है। मेरी और रामायणें किसी किसी के पास होंगी। वह एक ही मरतबा छपीं। मैं पंजाब से अपनी जन्म भूमि राज बनारस में चला आया। यहाँ मैंने राधास्वामी धाम मठ की नीव डाली जो काशी और प्रयाग के बीचों-बीच में गोपीगंज नामक कस्बा से ढाई तीन मील की दूरी पर है और मेरे सत्संग में इसी रामायण के आत्मिक विषयों पर विचार हुआ करता है।

रामायण चित्रों का एलबम तुलसीकृत रामायण एक एलबम (एक प्रकार की पुस्तक) है जिसमें सब प्रकार के जीते जागते चित्र स्वार्थ और परमार्थ का सुहाना दृश्य आँखों के सामने लाकर खड़ा कर देते हैं। इस एलबम में जितने चित्र या तसवीरें हैं सब बोलती, चलती, फिरती और कुदकती फुदकती हुई भाषती हैं और सब की सब किसी न किसी

आदर्श का रूपक दिखाती रहती हैं। लेखनी का यह सिनेमा कुछ ऐसा हृदयवेधक और मनोरंजक है कि मनुष्य देख कर चकित और विह्वल हो जाता है।

समय आया। मैंने राधास्वामी धाम का मठ एक आचार्य को सौंप दिया और अलीगढ़ चला आया। वहाँ दयाल नगर की दयाल डिग्गी में मुझे दयाल धाम के नाम से एक दूसरे मठ के बनाने का विचार है। यहां पर मेरे मित्रों की यह सम्मति हुई कि अलीगढ़ से 'सुमेरु पर्वत' नामक एक मासिक पत्र निकाला जाय। जिसमें इस रामायण के गूढ़ और सूक्ष्म विषयों पर अधिकता के साथ प्रकाश डाला जाय। मैंने इसे पसन्द किया। पं० देवीचरन जी को इस काम पर नियत किया। दाना पानी ने मुझे अलीगढ़ में रहने नहीं दिया। वहां से मैं चल खड़ा हुआ। मेरठ, देहली, अलवर, जैपुर, कोटा और बम्बई होता हुआ मैसूर की राजधानी बंगलौर में आकर ठहरा। बाबू मुन्शीलाल जी ठेकेदार ने 'सुमेरु पर्वत' का स्मरण दिलाया। मुझे अवकाश नहीं था। और काम कर रहा था। तीन महीने के लगभग मैं बंगलौर में रहा। २० जौलाई सन् १९३४ ई० को वहाँ से चलकर मैं २१ जौलाई को बेगम पेट (हैदराबाद दक्षिण) में आ गया। यह जगह पहाड़ी है, एकांत है, हैदराबाद से दूर है। मिलने मिलाने वाले कम आते हैं। यहाँ मासिक पत्र के कार्य्य आरम्भ करने का दबा हुआ संस्कार जाग उठा और आज २५ जौलाई सन् १९३४ ई० से मैंने उसके लिखने के लिये कलम उठाई।

सुमेरु पर्वत—रामायण से मुझे प्रेम है। राम की कहानी में मुझे अमृत का रस मिलता है। इसलिये मैं इसे 'सुमेरु पर्वत' (मासिक पत्र) के लिये एक और रामायण का लिखना प्रारम्भ करता हूं।

'सुमेरु पर्वत' क्या है ? सबसे पहिले इस शब्द का अर्थ संक्षेप में निर्णय कर देना आवश्यक है। 'सुमेरु' कोई केवल कल्पित पदार्थ नहीं है। जो नहीं जानते, अथवा जो वैदिक, पौराणिक या हिन्दू धर्म से परिचित नहीं हैं वे इसे कल्पित और मिथ्या कह सकते हैं। जो जानते हैं और थोड़ी बहुत धर्म की समझ रखते हैं, उनके लिये यह यथार्थ पदार्थ है और वे इसे अपने धर्म, कर्म, विज्ञान और दर्शन आदि का केन्द्र मानते हैं।

अर्थ--'सुमेरु पर्वत' में तीन शब्द हैं:- (१) सु (२) मेरु (३) पर्वत। (१) सु (अच्छा) (२) मेरु (श्रेष्ठ, उत्तम, बढ़कर) संस्कृत धातु 'मी'=(फैलाना), पर्वत संस्कृत धातु पर्व=(भरा हुआ)

शाब्दिक अर्थ स्पष्ट है। जो अच्छे से अच्छे, उत्तम से उत्तम, बढ़िया से बढ़िया पदार्थ से भरा हुआ हो और जिससे वह उत्तम पदार्थ चारों ओर बिखरते फैलते और धार बन कर पोटते हैं, वह सुमेरु पर्वत है।

पौराणिक और वैदिक परिभाषा में यह एक पवित्र पहाड़ है जो सातों लोकों के बीचो बीच खड़ा है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। इसकी चोटी पर ऊँचे से गंगा की धार उतर कर संसार के चारों ओर चार अनेक नामों से फैल कर पोट जाती है। और तीन लोकों में बहती हुई चौथे लोक का पता देती है। यह "सुमेरु पर्वत" सोना और मणि माणिक से भरा हुआ है।

यह रुढ़ि और योगिक अर्थ है।

सात लोक--सात लोक या द्वीप नीचे लिखे जाते हैं। वह यह हैं:—

(१) भू लोक (२) भुवर लोक (३) सुर लोग (४) महर लोक (५) जन लोक (६) तप लोक (७) सत्य लोक।

इसका इशारा गायत्री के प्राणायाम मंत्र में इस प्रकार आया है—

गायत्री में तीन लोक और चौथा पाद--

ओ३म भू ओ३म् भुवः ओ३म् स्वः
ओ३म् महः ओ३म् जनः ओ३म् तप;
ओ३म् सत्यम्।

गायत्री शिक्षा बच्चों के लिये है--पुराने समय में बच्चों या थोड़ी आयु वाले लड़कों को केवल तीन लोकों-भू, भुवः स्वः का पता देकर सावित्री (सूर्य्य) का इष्ट बंधा कर साक्षात्कार का अवसर प्रदान किया जाता था।

गायत्री मंत्र केवल बच्चों की शिक्षा थी। वह यह है: —

ओ३म् भूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धी महि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

गायत्री मंत्र का अर्थ--इसका साधारण अर्थ यह है— "(१) (बच्चो, विद्यार्थियो, ब्रह्मचारियो!) ओ३म् (का उच्चारण करते हुए भू लोक भुवर लोक और सुर लोक (की वासना और भावनाओं को भूलकर) (केवल) (२) उस रुचिदायक सूरज (का ध्यान और साक्षात्कार करो) (३) उस देवता के प्रभाव को ग्रहण करो (४) वह तुम्हारी बुद्धियों का प्रेरक बनेगा।"

यह मन्त्र का साधारण अर्थ है। यह क्रिया योग है, जाप योग नहीं है।

प्रणाली बिगड़ गई। लोग आशय को भूल गये। इनको बचपन की शिक्षा और दीक्षा का ज्ञान तक नहीं रहा। आगे के लोकों का ज्ञान कैसे होता ?

जपने में सब गये भुलाई। मंत्र विधी का भेद न पाई॥
मंत्र भेद है सतगुरु पास। बिन गुरु सब नर फिरें उदास॥

उच्च शिक्षा—जब यह शिक्षा और दीक्षा समाप्त होती थी और सावित्री का बोध और साक्षात्कार प्रभाव के साथ कर लिया जाता था, तब आगे चार लोक (१ मह (२) जन (३) तप (४) सत्यम् की शिक्षा और दीक्षा दी जाती थी। और उसकी सफलता और सुफलता का समय उच्च श्रेणी के साधन उद्गीत के साथ मिलता था। यहां प्रणव से काम लिया जाता था। प्रणव उस नाम को कहते हैं जिसका उच्चारण जिभ्या होठ और दांतों की सहायता से कभी नहीं किया जाता था। केवल प्राण से किया जाता था। यही कारण है कि यह प्रणव कहा जाता है। जिसका सम्बन्ध केवल प्राण से हो वह प्रणव है। और इस उद्गीत का सहायक उदान वायु होता था जो सुमेरु पर्वत अर्थात् शिखा या चोटी की ओर लेजाता था। इसका विधान बृहदारण्यक और छान्दोग्य आदि उपनिषदों में आया है। यह प्रक्रिया सरल, सुगम और प्राकृतिक है जिसमें नाम के लिये भी कठिनाई नहीं है। लेकिन लोग भूल गये और भूलते चले जारहे हैं। इस महारामायण में इसका ब्यौरा रोचक कहानी के रूप में दर्शाया जायगा जो अधिकारी जन होंगे उससे लाभ उठायेंगे।

सुमेरु केन्द्र और चोटी है—यह सुमेरु पर्वत सातों लोकों की चोटी और केन्द्र में है। इसका रूपक नीचे के चित्र में देखो:—

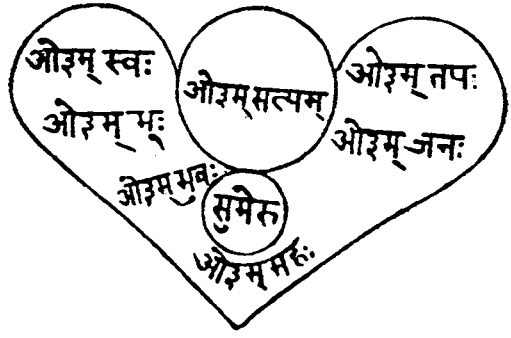

या इस प्रकार समझो

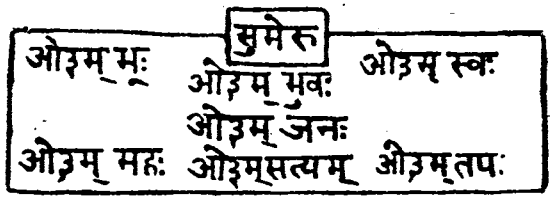

यह बातें पुस्तक पढ़ने से कम समझ में आती हैं। दीक्षा देने वाला गुरू सामने बिठाकर सरलता से साक्षात्कार करा देता है।

रामायण नाना हैं—इस महारामायण में उन सातों लोकों का वर्णन होगा जिनमें राम और रावण की लड़ाई अब भी

रात दिन छिड़ी रहती है। यह कभी न समझो राम मर गये रामायण खतम होगई।

नाना भांति राम अवतारा। रामायण शत कोटि अपारा॥

कागभुशुण्डी—इस "सुमेरु पर्वत" पर कागभुशुण्डी नामक ऋषि रहता है। जहां से रामायण का प्रसंग चलता है वह क्या है? यह महारामायण के पाठ से धीरे धीरे विदित होता चलेगा। जल्दी करने से काम न चलेगा। सम्पूर्ण राम की कथा उसे प्रकाश में लायेगी।

यहां हम केवल इतना संकेत देना आवश्यक समझते हैं--काग कहते हैं "कौए" को, जो आवाज़ देता है और भुशुण्डी "तोप" को कहते हैं जो आग बरसाती है। काग भुशुण्डी यथार्थ में शब्द का अग्निबाण है जो भ्रम और संशय को जलाकर भस्म कर देता है।

शब्द ही मारे मर गये, शब्द ही तजिया राज।
जो यह शब्द विवेकिया, ताका सरिया काज॥
शब्द हमारा आदि का, शब्द ही लेय परख।
जो तू चाहे सत्य को, तो मत जाय सरक॥
शब्द गुरू को कीजिये, बहु तक गुरू लबार।
अपने अपने स्वाद को, ठौर ठौर बट मार॥
शब्द शब्द में भेद है, शब्द शब्द में भाव।
सोई शब्द नित बन्दिये, जो गुरू बतावें दाव॥
शब्द शब्द में भेद है, शब्द शब्द में भाव।
एक शब्द औषधि करे, एक शब्द करे घाव॥
एक शब्द दुख राशि है, एक शब्द सुख राव।
एक शब्द बन्धन कटै, एक शब्द गले फांस॥

शब्द हमारा आदि का, शब्द ज्ञान प्रमान।
शब्द ही में अनुमान है, शब्द ही में विज्ञान॥

महारामायण में केवल कागभुशुण्डी और गरुण का सम्वाद है। और इसी के सात खंडों में सात लोकों के कर्म, धर्म, भ्रम, मर्म सब का वर्णन विस्तार के साथ आयगा।

गरुड़ क्या है—कागभुशुण्डी क्या है यह तो तुमने सुन लिया। अब यह गरुड़ क्या है उसे भी सुन लो।

गरुढ़ पौराणिक परिभाषा में विष्णु भगवान् का वाहन (सवारी) है, जो उन्हें सारे जगत में घुमाता फिराता रहता है। इसका रूप पक्षी (परन्द) का बनाया गया है, जो पख फैलाये हुए उड़ता रहता है और जहरीले सांपों को खा जाया करता है। यह और कुछ नहीं है, विष्णु के मन का नाम गरुड़ है।

विष्णु जगत का पालन पोषण करते हैं। उन्हें पौलिसा (नीति) से काम लेना पड़ता है। इस नीति में संशय विपर्य्यय हुआ करते हैं। इसलिये गरुड़ संशयात्मक मन का नाम है।

वाहन विषय—गरुड़ शब्द संस्कृत धातु गरुत (पर) और डी (उड़ने) से बना है। जो उड़ता है वह गरुड़ है। यह कभी नीचे जाता है, कभी ऊपर, कभी दांये, कभी बांये। ऐसा क्यों है? क्योंकि इसके आधार पर सृष्टि कर्म की धार है। विष्णु प्रेम का अधिष्ठाता है।

गणेश कर्म का अधिष्ठाता है। उसका मन चूहा है जो लोलुप से कर्म करने वाला हाथी की तरह बंध कर कर्म कर लेगा तब यह लोलुप मन उससे दबा रहेगा।

शिव ज्ञान का अधिष्ठाता है। उसका वाहन बैल है जो चारा घास खाकर शांति से बैठा हुआ पेट से चारे को मुंह में खींच-कर जुगाली किया करता है। ज्ञानी जो बात सुनता है उस पर बार बार विचार करता रहता है। यह बिचार करना ही जुगाली है। वह बैल शिव का वाहन या मन है।

जो कर्मी हैं और कर्म काण्डी हैं भाई।
समझते हैं निज कर्म में निज भलाई॥
हैं गणपति के श्रद्धालु और समुदाई।
है मन इनका लोलुप समझ ऐसी आई॥
जो चित एक हो तब यह मन हाथ आवे।
नहीं जब तो चूहा अधिक फिर सतावे॥
जो ज्ञानी हैं मन बैल उनका बना है।
विवेकी है यह, उसको यह कामना है॥
मनन करता रहता है मन में तना है।
कठिन बैल की नाथ का थामना है॥
समझ बूझ कर इससे तुम काम लेना।
विवेक और बैराग में चित्त को देना॥
जो प्रेमी उपासक गरुड़ उनका मन है।
कभी कुछ कभी कुछ कभी कुछ जतन है।
कभी इसका डेरा पहाड़ और बन है।
कभी यह श्रवण है कभी वह मनन है॥
गरुड़ पक्षी की भाँति उड़ता है निशदिन,
है सुख दुख इसे कर्मों को अपने गिन गिन॥

भूमिका में केवल संक्षेप से काम लिया जा सक्ता है, नहीं तो पुस्तक के आकार के बढ़ जाने का भय है।

गरुड़ का संशय---गरुड़ को संशय हुआ कि रामचन्द्रजी ब्रह्म के अवतार नहीं है। वह बहका बहका इधर उधर मारा फिरा। अन्त में सुमेरु पर्वत पर जाकर कागभुशुण्डी से मिला। उनसे बात चीत की। संशय निवारण होगया। शांति आगई।

इस महारामायण में इसी का वर्णन किया गया है। जो पढ़ेंगे, समझेंगे, बूझेंगे, उनको लाभ होगा। रामायण का तत्व उनके हाथ आयगा। जो न पढ़ेंगे उनके विषय में हमें कुछ कहना सुनना नहीं है। बात अधिकारी प्रति होती है।

शिवव्रतलाल
बेगम पैट
हैदराबाद (दक्षिण)

महारामायण

अनुभव खंड (पूर्वार्द्ध)

पहिला समुल्लास

गरुण का संशय

'राम ब्रह्म के अवतार कभी नहीं हो सकते। जो लोग उन्हें ब्रह्म का अवतार मान रहे हैं यह उनकी भूल है। सोचा नहीं, विचारा नहीं। एक ने कहा, दूसरे ने कहा, बात फैलते फैलते फैलती चलती गई और सब उन्हें एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक अवतार मानने लग गये। मैं किसी ऐसी बात को नहीं मानूंगा जो जाँच परताल में नहीं आती, जिसका निश्चय बुद्धि को नहीं होता और ज्ञान जिसका साक्षी नहीं बनता।

और उसके कारण भी हैं। एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों और हजारों। ब्रह्म पूर्ण और अखंड हैं, राम अधूरे, अपूर्ण और खंडित हैं।

ब्रह्म सर्व देशी हैं, राम एक देशी हैं। ब्रह्म अजन्मा है, राम का जन्म हुआ है। ब्रह्म अमर है मरता नहीं। राम मृत्यु लोक के जीव हैं जो आज नहीं तो कल मरेंगे। जो जन्मेगा वह मरेगा। यह सृष्टि क्रम का मुख्य सिद्धान्त और अटल नियम है।

राम ने मनुष्य के घर में जन्म लिया। उनके बाप का

नाम दशरथ था। माता कौशल्या हैं। उनके भाई बन्धु हैं। ब्रह्म न जन्मता है न मरता है। न उसके बाप है, न माँ है।

राम शरीरधारी हैं, ब्रह्म शरीर रहित हैं। राम के हाथ, पांव, नाक, कान हैं। ब्रह्म के हाथ पांव कुछ भी नहीं हैं। ब्रह्म के विषय में शास्त्र ऐसा कहते हैं।

बिनु पद चले सुने बिन काना। बिन कर कर्म करे विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिन बानी बक्ता बड़ योगी॥

और राम क्या करते हैं? क्या किया? और क्या करेंगे। हाथ से दिन रात वह करते हैं काम। पांव से जाते हैं पर्वत नगर ग्राम। कान से सुनते हैं सबकी बातचीत। पालते हैं लोक मर्यादा की रीत॥

बोलते हैं, डोलते हैं, जीव हैं। कैसे मानें राम सचमुच ब्रह्म हैं! ब्रह्म में जाति, सुजाति, कुजाति, विजाति भेद नहीं हैं। राम में यह सबके सब हैं।

ब्रह्म समुद्र है, राम उस समुद्र की बूंद है। लोग यों ही अनाप शनाप बकते हैं। ये अज्ञानी मूढ़ हैं। मुझे ज्ञान प्राप्त है। मैं कैसे यों ही मान लूं कि राम ब्रह्म हैं। यह हो नहीं सकता। राम ब्रह्म नहीं हो सकते।

बूँद में और सिन्ध में है भेद कुछ। ब्रह्म व्यापक-राम में है खेद कुछ॥
राम नर हैं, नर के वह करते हैं काम। ब्रह्म ईश्वर का लिया करते हैं नाम॥

ब्रह्म में सुख दुख कहाँ! राम सुखी और दुखी होते हैं। ब्रह्म को स्त्री नहीं, राम की स्त्री सीता है। उसे रावण हर ले गया। यह उसकी खोज में वन, पर्वत, नदी, नाले, लांघते रहे। रोते झींकते थे। मैंने आप उन्हें ऐसी दशा में देखा। मैं राम को ब्रह्म नहीं कहता, संसार भले ही उन्हें जो चाहे कहे।

ब्रह्म निर्लेप है, अच्युत है। वह बुरा भला कुछ नहीं कहता, अपने स्वभाव में रहता है। राम उचित अनुचित सब प्रकार के

काम करते रहते हैं। सूर्पणखां की नाक जड़ से उड़ा दी, खर-दूषण और त्रिशिरा के साथ लड़ाई भिड़ाई मोल ली। सोने का हिरण देखकर मोहित हो गये। यह भी नहीं समझा कि संसार में सोने का हिरण नहीं होता। सीता की बातों में आ कर धनुषबाण हाथ में लिया। चढ़ दौड़े। हिरण को मारा। वह मारीची मायाधारी राक्षस निकला। पछताए, लजाए, घबराए, कुटी में आये। सीता को नहीं पाया, दुःखी हुए, जंगल जंगल मारे फिरे। राम केवल मनुष्य थे। साधारण न सही, असाधारण सही, लेकिन थे तो मनुष्य, वह ब्रह्म कैसे ठहरे! ब्रह्म में यह बातें कहाँ!

राम जी को ब्रह्म मैं कहता नहीं। भ्रम में और भूल में रहता नहीं।
भूल के सागर में मैं बहता नहीं। भ्रम के दुख-विपत को सहता नहीं॥
राम नर हैं, राम नर हैं, राम नर। नरपना मैं देखता हूँ अधिकतर॥

यह भी जाने दीजिये। ब्रह्म का न कभी कोई सहायक हुआ, न हो सकता है। राम ने रीछ, बन्दर और राक्षसों का सहारा ढूंढ़ा, उनकी पलटनें बनाईं, सेतु बांधा, लंका पर चढ़ाई की। सबको मार गिराया। योधा, सूरमा, रणवीर, रणजीत, सब कुछ थे। लेकिन थे मनुष्य! इसमें सन्देह नहीं है।

मैं तुच्छ पक्षी हूं। जब रावण के बाँके पुत्र शूरवीर मेघनाथ ने उनको और उनके साथियों को नाग फांस से बांध लिया उनसे कुछ न बन पड़ी; असमर्थ हो गये। न हिल सकते थे, न डोल सकते थे। तब देवताओं ने मुझसे प्रार्थना की, 'गरुड़! राम पर संकट पड़ा है उन पर आपत्ति आगई है। इन्द्रजीत ने बाण विद्या के करतब से उन्हें नाग फांस में बांध रक्खा है। तुम जाओ अपनी अपूर्व गाडुरी विद्या से उन्हें इसी समय छुटकारा दो!" मैं देवताओं के कहने पर लंका की रण-

भूमि में गया, उनकी सहायता की और बंधन से छुड़ाया। न छुड़ाता तो राम का काम हो चुका था। जब राम को मुझ जैसे पक्षी की सहायता की आवश्यकता है तो मैं उन्हें ब्रह्म कैसे मानलूँ। मैं तो जब कहूंगा उन्हें मनुष्य ही कहूँगा।

ब्रह्म त्रिकालज्ञ है। भूत, वर्त्तमान, भविष्य तीनों काल का जानने वाला है। राम ऐसे नहीं हैं। उनमें न सर्वज्ञता है न त्रिकालज्ञता है।

ऐसी ऐसी बातें एक दो नहीं है सैकड़ों हैं। मैं किस किस को कहूँ।

राम नर हैं, नर के तन धन धारी हुए।
साहसी थे यश के अधिकारी हुए॥
साध कर चितको, किया सब अपना काज।
सेतु बांधा बन्दरों के दिव्य को साज॥
ले के सीता को अवध में आ गये।
अच्छे करतब वाले! सबको भा गये॥
सब लगे कहने कि ईश्वर राम हैं।
पूर्णता इन में है पूरण काम हैं॥
ब्रह्म सब कहते हैं मैं कहता नहीं।
अग्नि में अज्ञान के दहता नहीं॥

यह भ्रम और संशय है जो गरुड़ के मन में उत्पन्न हुए। वह शान्त होते तब तो कोई बात नहीं थी, मन की शान्ति दूर होगई होती, लेकिन भ्रांति ने अपना डेरा जमा लिया। साथ-साथ वह यह भी सोचते थे क्या यह सब के सब देवता और मनुष्य अज्ञानी हैं, जो राम को ब्रह्म और ब्रह्म का अवतार मान रहे हैं या मैं ही भूल चूक में हूँ।

यह गुत्थी सुलझे तो कैसे सुलझे ! यह ऋषि, मुनि, ज्ञानी ध्यानी सब के पास गये। प्रश्न किया. शास्त्रार्थ भी किये, लेकिन एक ने भी निश्चयजनक उत्तर नहीं दिया भ्रान्ति और अशान्ति बढ़ती ही चली गई और वह दुखी रहने लगे। सच है:—

अपने उरझे उरझियां, देखे सब संसार ।
अपने सुरझे सुरझियां, यह गुरु ज्ञान विचार ॥

दूसरा समुल्लास

ब्रह्मा जी और गरुड़ का सम्वाद

(ब्रह्मा और शिव में भेद)

भाव और विचार जब मनमें आते हैं, पहिले उनकी गति सूक्ष्म और अति सूक्ष्म होती है और वही सूक्ष्म अपनी बारी पर धीरे धीरे स्थूल रूप धारण कर के आंखों के सामने आ जाता है । जब विचारशील या भावशील मनुष्य अपने विचार और भाव के स्थूल रूप को देख लेता है तब उसको शान्ति और निर्भ्रांति प्राप्त हो जाती है। घर बनवाना, भाव विचार, इच्छा, वासना और भावना मात्र है। इसने जहां घट के भीतर जगह पाई, अन्तर ही अन्तर कुरेद, उपाय और यत्न की वृत्तियां जाग खड़ी होती हैं। वह सोचने लगता है। ईंट, पत्थर, रोड़े, लकड़ी इत्यादि की सामग्री इकट्ठा करके घर बनवाने और बनाने लग जाता है। घर बन गया। भाव और विचार ने घर के स्थूल रूप को धारण कर लिया। अब वह बिचार वाला उसी घर में रह कर शान्ति पाता है।

भावम् फल दायकम् । विश्वासम् फल दायकम् ॥

मति, बुद्धि और इष्ट प्राप्ति की इच्छा मन में आकर्षण शक्ति उत्पन्न कर देती है और यह काम बना लेती हैं। इसी का नाम सिद्धि-शक्ति है। इस सिद्धि की जड़ स्मरण में रहती है। स्मरण विचार की भूमिका है। जब तक विचार स्थूल रूप में नहीं बन लेता तब तक चैन नहीं लेने देता। वह प्राकृतिक नियम है।

भावना में विश्वास हो। 'वि' का अर्थ संस्कृत में 'पहले' या पहला है और "श्वस" सांस लेना या जीना है। विश्वास निश्चय को कहते हैं। यह निश्चय भाव के साथ हो और काम बना बनाया है। देर नहीं लगती। हां! इसका जल्द समझ में आना जरा कठिन है। मनुष्य कुछ न करे, केवल अपने भाव और विश्वास में दृढ़ रहे। उसी से श्वाँस ले, उसी से जिये, उसी में लगा रहे और सब कुछ आप ही आप हो रहेगा और दृढ़ भावना सब कुछ करा लेगी।

भावना पक्की हो मन में, पक्का ही विश्वास हो।
क्यों न ऐसे जन की इस, रचना में पूरी आस हो॥
आस में विश्वास और, विश्वास विश्व की आस है।
जिस में यह विश्वास है, वह कैसे जग में निराश हो॥

गरुड़ मारे मारे फिरे, इधर गये उधर गये। किसी ने उन के प्रश्नों के शान्तिजनक उत्तर नहीं दिये। यह व्याकुल और बेचैन होते गये।

नारदजी से मिले जो आदि ऋषि और ब्रह्मा के पुत्र कहलाते हैं और उनको अपने भ्रम का वृत्तान्त कह सुनाया। नारद जी को दया आई, कहने लगे, "ऐ गरुड़! ईश्वर की माया प्रबल है। कौन ऐसा जीव-जन्तु है, जिस पर इस माया ने

छापा नहीं मारा। इसने मुझे सैकड़ों नाच नचाये हैं। जब यह किसी के सिर पर खेलने आती है उसे अनेक प्रकार से भ्रमाती और भटकाती है। अब यह तुम्हारे सिर पर चढ़ी है, तुम्हारे चित्त को भ्रांति में डाल दिया है। माया का यह खेल भी किसी अभिप्राय से होता है। तुम कुछ न करो। सीधे ब्रह्मा जी के पास चले जाओ। वह कर्म धर्म के जानने वाले और वेद-वाणी के कर्ता-धर्ता हैं। यह तुम्हारे इस भ्रम को निवारण करेंगे।

गरुड़ ने ब्रह्माजी के पास जाकर अपने चित्त की व्याकुलता की कहानी सुनाई। ब्रह्मा जी ने सुनने को तो सब कुछ सुन लिया लेकिन कुछ और कहा सुना नहीं। थोड़ी देर चुप रह कर बोले—"मैं रजोगुणी हूँ। मुझ में सत का प्रतिबिम्ब पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं लेकिन ठीक-ठीक प्रतिबिम्ब शिव पर पड़ता है और वह इसे ग्रहण करते रहते हैं। तुम उनके पास जाओ। वह दयालु कृपालु हैं। इस तुम्हारी उलझी हुई गुत्थी को सुलझा देंगे। मुझमें वह सामर्थ्य नहीं है।"

ब्रह्मा की बात सुनकर गरुड़ को आश्चर्य हुआ, कहा:—'भगवन्! संसार में आप सर्वश्रेष्ठ और जगत के पितामय हैं। ज्ञान, ध्यान के आधार और केन्द्र हैं। आपने वेद रचे हैं। आप यह क्या कहते हैं? शिवजी प्रशंसनीय हैं, लेकिन आपका पद ऊँचा है।"

ब्रह्मा जी हँसे, "ए गरुड़! मैंने जो कुछ कहा हैं सच्चा ही कहा है। लगाव लपेट से काम नहीं रक्खा और न टालम-टूल किया है। तुम भ्रमग्रस्त हो। मेरी बात नहीं समझ सके। सुनो, मैं रजोगुण प्रधान हूँ। रजोगुणी वृत्ति चंचल होती है। शिवजी तमोगुण प्रधान हैं। तमोगुणी वृत्ति दृढ़ होती है। यही

कारण है कि कल्याणरूप शिव परमेश्वर कहलाते हैं। विष्णु सतोगुण प्रधान हैं। तुम को माया ने भ्रम में डाल रक्खा है और रजोगुणी वृतियाँ प्रबल हो गयी हैं। मैं कुछ कहता हूं तो यह रजोगुण और प्रचंड होगा। शिव में आरूढ़ता और दृढ़ता विशेषतर है। वह जो कहेंगे तुम्हारे घट में उतर जायगा और संशय निवारण हो जायगा। मुझ से यह आशा न रक्खो।"

गरुड़ बोले 'मेरी समझ में यह सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण नहीं आये।"

ब्रह्मा—कैसे समझ में आते! समझ तो कैलाशपति शिव में है। वह ज्ञान के अधिष्ठाता हैं। उसका कुछ भास और भाग मुझे मिला है। विष्णु सतोगुण के रूप हैं। उसका ठीक-ठीक बिम्ब शिव पर पड़ता है। सत कहते हैं "होने" को। यह शब्द संस्कृत धातु "अस" से निकला है। इसका केवल अर्थ 'होना' ही है। "तम" कहते हैं अंधेरे को। यह अन्धकार है। 'सत' प्रकाश और 'तम' अन्धकार है। अन्धकार ही प्रकाश को ग्रहण करता है। और 'रज' क्या है? यह अन्धकार और प्रकाश की मिली-जुली अवस्था होती है। कर्म, धर्म का मैं अधिष्ठाता हूं। यह तुम्हारा भ्रम अज्ञान है। तुम ज्ञान को चाहते हो। ज्ञान शिव में है क्योंकि वह अन्धकार रूप होने के कारण प्रकाश या ज्ञान को आकर्षित करते रहते हैं। क्या तुम नहीं देखते कि प्रकाश सदा अन्धकार की तरफ दौड़ता रहता है। मनुष्य घर में दिया बालता है। इससे पहले धुआं निकलता है। घर की छत में मंडलाकार हो रहता है और दिये का प्रकाश उसकी तरफ़ आकर्षित होता रहता है। यों ही सत के प्रकाश का पूरा भाग कल्याणरूप शिव ही को प्राप्त होता है

और उनके पास जाने से तुम्हारा कल्याण होगा।"

गरुड़ – आप कृपा करके इस सत, रज, तम की आकर्षण-शक्ति और बिम्ब-प्रतिबिम्ब का विषय मुझे समझा दीजिये।

ब्रह्मा – आगे के चित्र को देखो:—

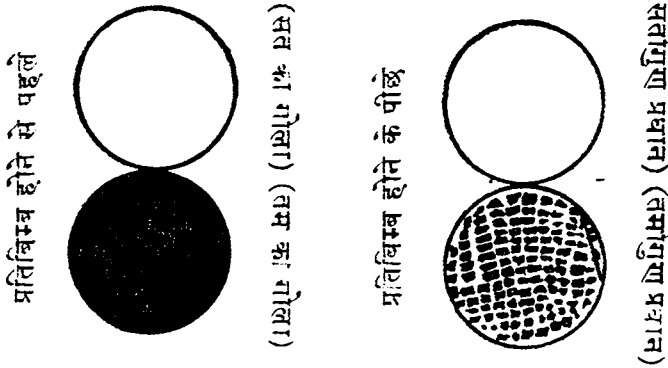

'तम' प्रकृति प्रधान अंधकार जड़ है। 'सत' प्रकाश और चेतन है। सत में प्रकाश बिम्ब है और उसका जो प्रभाव तम के गोले पर पड़ता है वह प्रतिबिम्ब है। चेतन या प्रकाश का जो प्रभाव इस तम के गोले पर पड़ता है, उसी से तत्त्व, भूत, योगिनी, बेताल आदि उत्पन्न होते हैं जो शिव जी के साथ रहते हैं।

भूत पांच हैं:—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और योगिनी अनेक हैं। जो **मिलने, युग होने या जुड़ने** से शक्तियां प्रगट होती हैं, वह योगिनी कहलाती हैं। ताल, बेताल आदि आदि राग रागनियां हैं जो भूतों (तत्त्वों) के मेल (टक्कर) से प्रगट होती हैं और यह सब के सब शिवजी के इधर-उधर नाचते रहते हैं। रचना का मसाला इनसे बनता है और वह कुछ नहीं है केवल जड़-चेतन की मिलौनी का रहस्य

है। यह तम का गोला दृढ़ है और शिव के अधीन है। जैसे जब समुद्र में हिलोर आती है या ज्वार भाटे उठते हैं तब बुदबुदे, लहर, झाग आदि प्रगट होते हैं. वैसे ही चेतन की धार जब-जब जैसे-जैसे इस तम के गोले पर पड़ती है, तब तत्त्व, भूत, योगिनी, बेताल आदि की उत्पत्ति होती है। चेतन धार के आकर्षण करने और आकर्षित होने से शिवजी ज्ञान के अधिष्ठाता, ज्ञानी, परमेश्वर और योगी कहलाते हैं। यह उनका रूप है और चेतन विष्णु का रूप है।

गरुड़–और आप रजोगुणी और रजोगुण प्रधान कैसे हुए ?

ब्रह्मा—इस चित्र को देखो:—

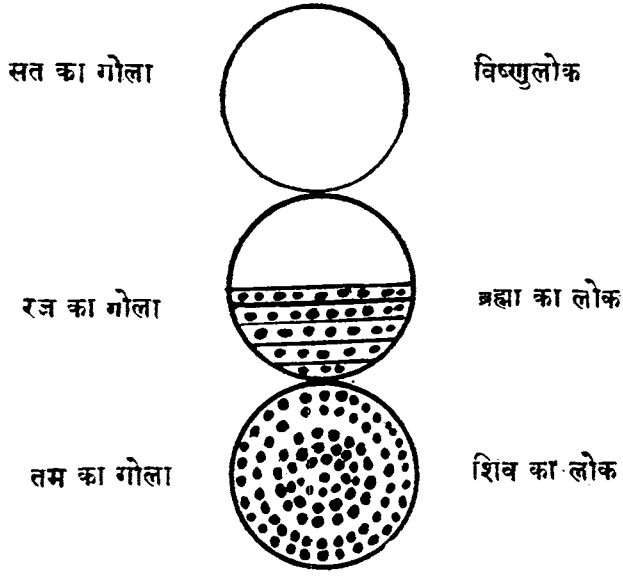

विष्णु ऊँचे, शिव नीचे और मैं ब्रह्मा बीच में हूं। मेरे लोक

में सत और तम दोनों को मिलौनी है। रज संस्कृत धातु (रज) से निकला है। जिसका अर्थ रंग है। 'सत' उजला, 'तम' काला, और रज उजला, काला, लाल, पीला, नीला, बेगनी आदि रंगोंवाला है। इसीलिए उसका नाम रज है। जैसे-जैसे प्रतिबिम्ब की सामग्रियों में अदल-बदल, घनापन फीकापन आदि आते गये, वैसे ही अनेक रंग बनते गये। मेरे लोक को रज या रंगवाला लोक कहते हैं।

सत ऊँचा, तम नीचा और रज बीच में है। मैं अधेड़ में हूं, न ऊपर न नीचे। मेरी सन्तति इसी कारण से दुखी और सुखी होती है। पूरा सुख किसी को भी नहीं मिलता।

उस चित्र से भी तुमको मेरी और मेरे लोक की समझ नहीं आई तो इस चित्र को देखो:—

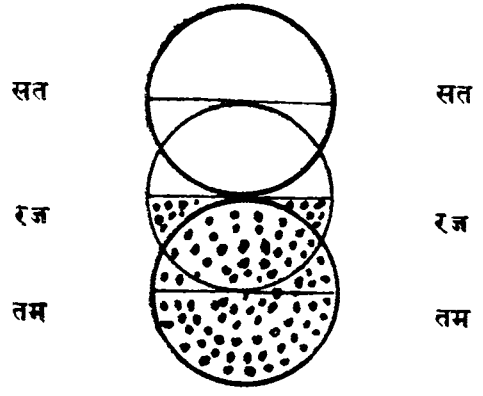

इन त्रिगुणात्मक गोलों या लोकों में मेरा लोक रजोगुणी, मिला-जुला आधा तीतर आधा बटेर! न इधर का न उधर का। कर्म धर्म की बात होती तो मैं बताता। ज्ञान विषय का सम्बन्ध शिव भगवान् से है। उनके पास जाओ। वह तुम्हारी

भ्रांति दूर कर देंगे।

गरुड़ अंधेर होगया! आप हमारे पितामह, जगत के उत्पन्न करने वाले हैं। आप कोरा और टके का उत्तर दे रहे हैं।

ब्रह्मा—यहाँ तुम फिर भूल में पड़ गये। 'मैं जगत का कर्त्ता नहीं केवल जीव-जन्तुओं का उत्पन्न करने वाला मुझे कह ला। जगत बड़ी बात है। वह तीनों गुणों का समूह और समुदाय है। रजोगुणी जीव ही मेरी सन्तान हैं।"

गरुड़—क्या मैं आपकी संतति नहीं हूं?

ब्रह्मा—थे, अब नहीं रहे। रजोगुणी और कर्मकांडी होते तो ब्रह्मपुत्र होते, अब ज्ञानकांडी बन रहे हो, शिवजी की संतान हो रहे हो। जो प्रेमी भक्त होना चाहता है, वह विष्णु की संतति बनता है।

गरुड़—वाह! वाह! तो क्या विष्णु और शिव की भी संतान होती है? संतान तो संतान ही है। एक की सन्तान दूसरे की कैसे हो जाती है?

ब्रह्मा—क्यों नहीं! शिव की सन्तान, भूत योगिनी, योगी, बैताल आदि हैं। विष्णु की सन्तान देवी देवता हैं। शिव भगवान की संतति के विषय में तुम सुन चुके हो। यह वह है जो जड़ चेतन की मिलौनी से होती हैं और देवी देवता वह दिव्य शक्तियाँ हैं, जो विष्णुलोक से सम्बन्धित हैं, जैसे मित्र (सूरज), वरुण, अर्य्यमां, इन्द्र (बिजली) बृहस्पति, विष्णु, उरुक्रम इत्यादि—एक की सन्तान दूसरे की गोद में जाने से हो जाती है। देवताओं में मैथुनी सृष्टि नहीं होती। उनकी सन्तति उनके इष्ट धारण कर लेने से हो जाती है।

गरुड़—भगवन्! आपने मुझे और भी भ्रान्ति में डाल दिया।

ब्रह्मा – मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि मैं केवल कर्म का अधिष्ठाता हूँ। कर्म के बदले तुम मुझ से ज्ञान का प्रश्न पूछने आये हो, जो मेरा विषय नहीं है। जाओ शिवजी के पास, वहां तुमको संतोषजनक उत्तर मिलेगा। तेली का काम तमोली नहीं करता।

गरुड़—अच्छा महाराज ! जारहा हूँ। नमस्कार !!!

तीसरा समुल्लास

गरुड़जी और शिवजी का सम्वाद

(गुरू और सत्संग महिमा)

गरुड़जी निराश होकर चल दिये। उदास थे। जब मनुष्य का काम नहीं बनता या उसका कार्य सिद्ध नहीं होता, तब उसे दुःख दबोच लेता है, चिंता घेर लेती हैं, अशाँत हो जाता है। ईश्वर न करे कोई भ्राँति में पड़े। भ्रम का भूत जब किसी के सिर, अन्तःकरण और शरीर में प्रवेश करता है तो फिर उसे कहीं भी चैन नहीं लेने देता। वह भ्रमता, भटकता फिरता रहता है। इस रोग की औषधि कठिन होती है। पढ़े-लिखे मनुष्य जिनका जीवन बनावटी होता है, कही-सुनी बातों में आकर बहुधा भ्रम के वशीभूत हो जाते हैं और बहुत बुरी प्रकार से मारे जाते हैं। इनकी विद्या, अविद्या बन जाती है। अन्धों के समान टटोल कर चलते हैं। युक्ति पर युक्ति लड़ाते हैं। ग्रन्थ इनके लिये ग्रंथि बन जाते हैं और इन्हें जीते जी इस आपत्ति से छुटकारा पाने का अवसर हाथ नहीं आता। इनसे

तो मूढ़ प्राणी अच्छे होते हैं, जिनको जगत की गति नहीं व्यापती।

रास्ते में जा रहे थे। कैलास पर्वत की तरफ दृष्टि थी, जो शिव भगवान् का निवास-स्थान था। इधर तो ये उधर जा रहे थे, उधर से शिव भगवान पार्वती के साथ नन्दी बैल पर चढ़े हुए कुबेर नामक देवता के घर को जा रहे थे। गरुड़ ने देखा, पहचान लिया। शिव का रूप अद्भुत है। दिगम्बर नङ्गे-धड़ंगे! हाथ में डमरू, त्रिशूल धारण किये हुए! ललाट पर अर्द्ध चन्द्र चमकता हुआ! सारे शरीर पर भस्म मला हुआ! बरगद की जड़ों के समान जटा जूट बँधी हुई! बैल पर मृग-चर्म का आसन बिछा हुआ! त्याग-वैराग की मूर्त्ति! आखें लाल-लाल अंगारा बरसाने वाली! तेजस्वी, तेजवान्!

गरुड़ ने साष्टाँग दण्ड प्रणाम किया। शिवजी ने इन्हें देखकर करुणारस में सनी हुई बाणी से इनका सत्कार किया। गरुड़! तुम मेरी खोज में चले हो। मैं जानता हूँ तुम किस आशय को लेकर विष्णुलोक से निकले हो। रास्ते में मिले। मैं तुमको कैसे कोई बात समझा बुझा सकता हूँ। ज्ञान ऐसा विषय नहीं है कि जो राह चलते पथिक को साधारण प्रश्नोत्तर में बताया जासके।

मिले गरुड़ मार्ग में मोही।
का विधि मैं समझाऊँ तोही॥

इसके लिए स्थान, मण्डल और लीला चरित्र की आवश्यकता है। दर्शन, ज्ञान, और चरित्र तीनों साथ-साथ चलते हैं और निज स्थान ही पर वह लाभदायक होते हैं। देखना, सुनना और चरित्र का गढ़ना स्थान के आधीन हैं। स्थान ही में साधना की जाती है। स्थान में अनुभव की प्राप्ति सम्भव है।

साधन सम्पन्नता आप अनुभव सम्पन्नता प्रदान करती है। बिना साधन के अनुभव नहीं होता, और यह दोनों स्थान ही पर हो सकते हैं। मैं इस समय कुवेर जी से मिलने जा रहा हूँ। रास्ते में वार्त्तालाप नहीं कर सकता।" गरुड़जी ने कहा— "नाथ! क्या आप भी मुझे निराश करेंगे?"

शिवजी ने उत्तर दिया. 'मैं किसी को भी निराश न करता हूं न करना चाहता हूं। मेरे यहाँ आकर कोई निराश नहीं जाता। लेकिन समय और है। तुम अधिकारी हो। तुम्हारे हृदय में विकट संशय उत्पन्न हुआ है। उसके निवारण करने के लिए समय चाहिये। तुम जिज्ञासु के रूप में आये हो। जिज्ञासु आर्त्त होता है। आर्त्त को जो बचन कहा जाता है, वह उसको गाँठ बांध लेता है। तुम मेरा कहना मान जाओ। अपने मार्ग को खंडित न करो। इसी पथ से सुमेरु पर्वत पर चले जाओ। वह तुम्हारी नाक की सीध में है। वहां उस पहाड़ की चोटी पर कल्पवृक्ष है। उसकी छाया में अनेक प्रकार के चहचहा लगाने वाले हंस पक्षी बसते हैं। इनके मध्य में एक परमहंस बैठ कर अपना शब्द नाद सुनाता रहता है। जो राम नाम का कीर्त्तन या राम का कथा कीर्त्तन है। वहाँ रात दिन यही चर्चा होती रहती है। इसके अतिरिक्त वह और कोई काम नहीं करते। इस परमहंस का नाम कागभुशुण्डी है। उनसे जाकर मिलो। उनका सत्संग करो। उनका बचन सुनो। वहां जाने से तुम्हारे भ्रम का नाश आप ही आप हो जायेगा। यह सुगम, सरल और साधारण उपाय है।

नित नियम जिसका, कथा और कीर्त्तन।
शान्त और निरभ्रान्त जानो उसका मन॥
जो कथा और कीर्त्तन, नित करता है
चैन, सुख आनन्द, मन में भरता है॥

जिसका उद्यम हो, कथा और कीर्तन ।
उसके बचनों का करो, श्रवण मनन ॥

गरुड़ ने फिर विशेष बात-चीत नहीं की। शीश झुकाकर कैलाशपति और पार्वती को नमस्कार किया और उनकी आज्ञा लेकर सुमेरु पर्वत की तरफ अपना पग बढ़ाया। जब वह दृष्टि से ओझल हुआ, पार्वती ने शिवजी से पूछा ? "प्रभो—आप जगत-गुरु और परमेश्वर हैं। गरुड़ आपके पास शिक्षा और दीक्षा लेने के लिये आये थे। आपने उनको टाल बताई, काग-भुशुंडी के पास जाने की सम्मति दी। इसमें क्या रहस्य है ?"

शिवजी ने उत्तर दिया, "प्रिया ! मैं योगी, त्यागी, वैरागी और भूत, वैताल आदि का तो गुरू हो सकता हूं और उनको शिक्षा दे सकता हूँ, क्योंकि मैं योग, त्याग, वैराग का इष्ट हूं. लेकिन मनुष्य, पक्षी, और जीव-जन्तु का गुरु नहीं हो सकता। गुरु तो वही होता है और हो सकता है जो उसकी जाति का हो। मनुष्य का गुरु जब होगा मनुष्य ही होगा। ईश्वर और परमेश्वर उसका गुरु न कभी हुआ और न होगा। यह सृष्टि-नियम के प्रतिकूल है। प्रेम और प्रीति परस्पर व्यवहार है। भक्ति और ज्ञान का दान जब मिलेगा, सजातीय गुरु ही से मिलेगा। सूक्ष्म प्राणी का गुरु सूक्ष्म प्राणी होता है, स्थूल शरीर धारी का गुरु स्थूल शरीरधारी ! मनुष्य जब तक जीता है, स्त्री उसको प्रेम करती है। वह मरजाये और सूक्ष्म शरीर में आकर उससे मिलना चाहे तो वह डर कर भाग जायगी क्योंकि अब वह उसकी जाति का नहीं रहा। यह नियम है और नियम भी प्रकृति और सृष्टि का है। केवल सच्चे अधिकारी को उसकी समझ-बूझ रहती है। जो लोग इस नियम को नहीं समझते, उनकी भक्ति अनाप शनाप और बेतुकी होती है।

पार्वती—क्या गरुड़ को इस रहस्य की समझ थी ?

शिवजी—वह अधिकारी जिज्ञासू थे। उनको रहस्य की स्वाभाविक समझ थी।

खग समझे खग ही कर भाषा।
ताते उमा गुप्त कर राखा॥

ज्ञान तो संसार में परिपूर्ण है। सूरज, चांद, वायु, जल, पृथ्वी सब में ज्ञान है। इनसे मनुष्य को जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह अधूरे का अधूरा रहता है। उसके ज्ञान की पूर्ति जब होगी मनुष्य गुरू ही से होगी।

बंदौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर॥

पार्वती जी चुप हो रहीं और शिव और गरुड़ के सम्वाद के पश्चात् कुबेर जी के स्थान का रास्ता लिया।

चौथा समुल्लास

गरुड़ और कागभुशुंडी का मिलाप

(सुमेरु पर्वत)

गरुड़जी अपने पंखों को फैलाये हुए सुमेरु पर्वत की तरफ उड़े। पहाड़ अपना सिर ऊँचा किये हुये हुए आकाश से मिला हुआ प्रतीत होता था। जगह जगह नदी नाले बह रहे थे। पर्वत हिम और बर्फ से ढके हुए श्वेत रंग के झलक रहे थे। कुछ फल फूलों से लदे हुए थे। दृश्य सुन्दर और सुहाना था। निर्मल, मन्द, सुगन्धित वायु के झकोले बह रहे थे।

यह प्रसन्न चित्त थे। सुमेरु पर्वत की सुनहरी चोटी जगमगाती हुई दूर से दिखाई दी।

नन्ही नन्हीं फुआरें पड़ रही थीं। पर्वतों पर कभी-कभी कई-कई बार पानी बरसता रहता है। बादल हाथियों के समान झूम रहे थे। इन्द्र धनुष नाना प्रकार के रंगों से विभूषित सुमेरु पर्वत की शोभा को बढ़ा रहा था। उसको उस समय चार चांद लगे हुये थे।

यह उड़ते-उड़ते घाटी और दर्रों को लांघते हुए चोटी पर पहुंचे जहां लहलहाता हुआ कल्पवृक्ष अपनी अद्वितीय मर्यादा में खड़ा हुआ था। उसकी घनी छाया के नीचे हंसों की पाँत बैठी हुई कागभुशुंडी जी का बचन सुन रही थी। शांति मंगल चारों तरफ बरस रहे थे। किसी के चित्त में विकृति नहीं थी। न किसी का ध्यान किसी और तरफ़ था। गरुण ने इस समुदाय को देख कर अनुमान किया कि यह सब की सब पक्षियों की मूर्त्तियां थीं जो दृढ़ आसन पर जमी हुई बैठी थीं। कौन जाने उनकी सांस भी चलती थी या नहीं! हां! काकभुशुण्डी की चोंच क्षण प्रतिक्षण खुलती रहती थी। वह क्या कह रहे थे? उड़ते हुये गरुड़ को कैसे सुनाई देता! यह पहुँचे। इनके बड़े-बड़े पंख छातों के समान पृथ्वी पर नीचे गिरे। इनका पांव जमा और पक्षियों ने कुछ ध्यान नहीं दिया। काकभुशुंडी की आंखें खुली हुई थीं। इन पर दृष्टि पड़ी, पहिचाना, जाना कि यह गरुड़ भगवान् हैं। इन हंसों में चोंच से चोंच मिलाने की वह सभ्यता नहीं थी, जो आज कल के मनुष्य हाथ से हाथ मिला कर प्रकट करते हैं। पंख फुलाया, चोंच खोलकर बोले "आगतम्-स्वागतम्"! आपका यहाँ आना हमारे लिए शुभदायक है। बड़ी कृपा की। हम सबों को कृतार्थ किया।" गरुड़ जी ने उत्तर दिया "यहाँ हरिकृपा के बिना कोई नहीं आ सकता। निःसन्देह हरि ने कृपा की तब मुझे आपके पवित्र चरणों का दर्शन प्राप्त हुआ।"

बिनु हरि कृपा मिलहिं नहि संता।
संत मिले तब दुःख का अन्ता॥

कागभुशुंडी—"आप सच कहते हैं। आपको हरि ने यहां भेजा है। आप हरि के भेजे हुये आये हैं। हरि का भेजा हुआ हरि का रूप समझा जाता है। मैं आपको हरि का रूप समझ कर नमस्कार करता हूं।"

गरुड़—"महाराज! मैं भ्रम से विवश होकर उसके निवारणार्थ यहां आया हूँ।"

कागभुशंडा—"धन्य है वह भ्रम जो आपको यहाँ लाया और हम सबको आपका दर्शन दिलाया। वह भ्रम भी ईश्वर प्रेरित होने के कारण ईश्वर कृत और ईश्वर का रूप है, इसलिए हम उसे भी ईश्वर मान कर नमस्कार करते हैं"—

गरूड़जी अपने मन में बहुत चकित हुए, "यह बिना प्रश्न किए हुये मुझे उत्तर दे रहे हैं। मेरा भ्रम इनकी साधारण वाणी से दूर होगया। अब क्या पूछूं और क्या गछूं! जो बात ऋषि, मुनि ब्रह्मा और महेश के मुँह पर नहीं आई यह काग हंस जी अक्समात बोल रहे हैं। यह गुरु हैं ऐसी सामर्थ्य केवल गुरु में ही होती है। ईश्वर गुरु के शरीर में आया हुआ यहां प्रत्यक्ष हो रहा है। यह गुरू ईश्वर का अवतार है। मैं राम के अवतार होने में शंका कर रहा था। यहां आते ही शंका मिट गई। अब क्या पूछूं, क्या न पूछूँ! इनके रूप में ईश्वर प्रतीत होने लगा, इसलिए यह ईश्वर के अवतार हैं। जिनके मन का प्रेरक ईश्वर हो, वह प्रेरणा सूक्ष्म रुप से ईश्वर ही का रूप होती है। ईश्वर इस देह में प्रेरणा रूप से उतरता है और इसी उतरने को अवतार कहते हैं। गुत्थी सुलझ गई, पेच खुल गये, संशय का गोरखधंधा मिट गया। गरुण इस प्रकार मन ही मन में सोचते हुए कागभुशुंडीजी के चरणों में झुके।

"मन्त्र मूलम् गुरु वाक्यम्, पूजा मूलम् गुरु पदम् ।
ध्यान मूलम् गुरु मूर्ति, मोक्ष मूलम् गुरु कृपा ॥

कागभुशुंडी ने गरुड़ को पंख से उठाकर गले लगाया। प्रसन्न होकर बोले, "जिसको संशय नहीं होता वह निःसंशय नहीं बनता। जो बन्धन में नहीं आया, वह निरबन्धन नहीं हो सकता। जिसे रोग ने नहीं दबाया, वह अरोग्य कैसे होगा? ऐ गरुड़ आपके यहां पधारने से मेरी विचार-शक्ति को उत्तेजना प्राप्त हुई। आप धन्य हो! मैं आप जैसे विष्णु-वाहन के शुभागमन को अपने लिए शुभ गुण-सगुण और साथ ही निर्गुण समझ कर कृतार्थ हो गया। आप इस आश्रम को शोभा धाम बनाइये और हम सब को कृतार्थ कीजिये।"

पाँचवाँ समुल्लास

गरुड़ भुशुंडी संवाद

ब्रह्म विषय

न्हाये-धोये, खाया-पिया, सोये, रास्ते की थकावट दूर की। प्रातःकाल सूर्य्योदय से पहले हंस जागे। उनका सोना जागना समान था और नित्य कर्म और नित्य नियम से निश्चिन्त होकर सारी मण्डली कल्पवृक्ष की छाया में बैठी और भजन भाव में उपस्थित हुई:—

मङ्गलम् गुरु देव मूरति मङ्गलम् पद पङ्कजम् ।
मङ्गलम् अव्यक्त अनुपम् मंगलम् जन रंजनम् ॥१॥
मंगलम् निर्वाण सद्गति मंगलम् भव गञ्जनम् ।
मंगलम् ज्ञानस्वरूपम मंगलम सत आसनम् ॥२॥

मंगलम् ज्ञानस्वरूपम् मंगलम् सत् आसनम् । २ ।
धन्य महिमा आपकी है धन्य अद्भुत ज्ञान है ।
धन्य शुभ अनुमान है और धन्य शुभ परमाण है ॥३॥
भक्ति दीजै नाम की, यह नाम उलटा जाप हो ।
नाम ही में करनी, रहनी, नाम, तोल और माप हो । ४॥
जीते जी दर्शन मिले, सुख भोग का संयोग हो ।
साधना, सम्पन्नता, अनुभव का सच्चा योग हो ॥५॥

गरुड़जी सबके पीछे आये । कागभुशुंडी ने उनका सम्मान किया, सादर आसन दिया और कुशल पूछी । गरुड़जी ने कहा "शान्ति, आनन्द और अनुभव ज्ञान की कुशलता आप के पवित्र चरणों में रहती है" –

कागभुशुंडी—"महाराज ! अब आप कहिये हम आपकी क्या सेवा करें; क्योंकि यह मेरी समझ में आगया है कि आप को ईश्वर ने हम से सेवा लेने के लिये यहां भेजा है । नहीं तो हम कहां और आप कहां !"

वह आये घोंसले में अपने पंख फैलाये ।
कभी हम उनको कभी घोंसले को देखते हैं ॥

गरुड़—"भगवन् ! सच्ची बात तो यह है कि मुझे राम के अवतार होने में शङ्का हुई थी । मैंने सोचा कि पूर्ण अखण्डित ब्रह्म, राम के छोटे स्थूल देह में नहीं आ सकता । यह असम्भव और बुद्धि की युक्ति के विपरीत है । यह शंका तो आपके पवित्र चरणों के दर्शन से आप ही आप मिट गई और मैं पूर्ण रीति से संतुष्ट हूँ । अब केवल यह अभिलाषा है कि कुछ दिनों आपके सतसंग का लाभ उठाऊँ उससे मेरे मन में जो शेष मैल रहा होगा वह धो जायगा और अन्तःकरण शुद्ध अमल विमल और निर्मल हो जायगा ।"

कागभुशुण्डी--"गरुड़जी ! इस जगत् में जो कुछ है वह पूर्ण ही पूर्ण है। उसमें अपूर्णता नाम को भी नहीं है। और वह अपूर्णता जो प्रतीत हो रही है वह भी उस पूर्ण का अंग और अंश ही होती है।

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

पूर्ण से जो निकलता है, वह पूर्ण ही होता है। पूर्ण से जो निकाला जाता है, वह भी पूर्ण रहता है। उसमें घटाव बढ़ाव नहीं होता। एक नीम के वृक्ष से अनगिनत बीज प्रति वर्ष निकलते रहते हैं और यह सब के सब नीम के वृक्ष ही होते हैं। पहला वृक्ष जैसे का तैसा रहता है। न तो घटा न बढ़ा। मनुष्य के वीर्य्य से लड़के, पोते, परपोते उत्पन्न होते हैं और वह मनुष्य ही होते हैं।"

"यह उदाहरण है। उदाहरण का एक ही अंश लो और विचार करो। जितना चाहो उसे फैलाकर देख लो, इस नियम को अटल पाओगे।"

"यह ब्रह्म पूर्ण है। उसकी समानता किस से दी जाये। फिर भी दृष्टान्त से समझाने का प्रयत्न किया जाता है। व्यवहारिक जगत में दृष्टान्त से काम लेना पड़ता है। मैं उस ब्रह्म की उपमा सागर से देता हूं। सागर पूर्ण है। उसमें लहर, बुन्द, फुहारे, बुदबुदे, बुलबुले, झाग इत्यादि सब ही रहते हैं जो समुद्र से कभी न पृथक किये जा सकते हैं और न पृथक हैं। तुम कहोगे बुंद लहर तो टुकड़े हैं। पूर्णता का गुण यही है कि उसमें टुकड़े हों। वह टुकड़े तो हैं नहीं, उस के अंश हैं और यही सब मिलमिलाकर समुदायरूप से समुद्र कहलाते है। इसी प्रकार यह ब्रह्म है। जो कुछ था, जो कुछ है,

जो कुछ होगा, सब तीनों काल में उसी ब्रह्म में रहेगा। अलग न था, न है और न होगा। देश, काल, वस्तु सबके सब ब्रह्म ही में बसते हैं और सब मिलमिलाकर ब्रह्म कहलाते हैं।"

गरुड़—"तो क्या आप बुन्द को भी ब्रह्म कहेंगे ?"

कागभुशुण्डी—"हां और नहीं! समुद्र की दृष्टि से बूंद यथार्थ में समुद्र ही का रूप है। बूंद दृष्टि से तुम उसे बूंद कहो। तुमको रोकता कौन है! तत्व की दृष्टि से बूंद और समुद्र एक ही हैं। उनमें पृथकता और भिन्नता नहीं है।"

दृष्टान्त से समझो। भाप एक तत्व है। पानी और बर्फ इसी भाप से बने और बनते हैं। साधारण दृष्टि से पानी बर्फ नहीं हैं न बर्फ पानी है और पानी और बर्फ दोनों भाप नहीं हैं; लेकिन तत्व की दृष्टि से वह उससे अलग कब हैं! कभी नहीं।

वाटिका में जाके देखा, फूल और फल था वही।
नस में नाड़ी में समाया, रस था और जल था वही ॥ १ ॥
पहिले जो आकाश था, वायु बना अग्नी हुआ।
मिट्टी के आकार में, आधार स्थल था वही ॥ २ ॥
जिसको तुम रवि कहते हो, प्रकाश है और ज्योति हैं।
ध्यान से देखा बृहस्पति, शुक्र मंगल था वही ॥ ३ ॥
बल है वह बलवान में, शक्ती है शक्ति वान में।
दाँव में था पेंच में, कुश्ती का दंगल था वही ॥ ४ ॥
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, दृष्टि सृष्टि त्याग दो।
त्याग का वैराग का, अनुराग का दल था वही ॥ २ ॥
ब्रह्म सत्यम् जगत् मिथ्या, नित्य मुक्तम् केवलम्।
वह भविष्यत् भूत निश दिन, आज और कल था वही ॥६॥

वह है सबमें वह है सब का, सबका वह आधार है।
मल विमल में है समाया, और निर्मल था वही ॥ ७ ॥

यह ब्रह्म है जिसका लक्ष्य सत, चित और आनन्द है।"

गरुड़—"प्रभो! आप जो कहते हैं वह सच है लेकिन ज्ञानी उस ब्रह्म को सनातन से अटल, आधार और कूटस्थ समान कहते चले आ रहे हैं। आप सबको ब्रह्म ही ब्रह्म बता रहे हैं। क्या यह मतभेद नहीं है?"

कागभुशुण्डी—"नहीं! जो वह कहते हैं, वही मैं भी कहता हूं। थोड़े से ध्यान देने की आवश्यकता है। पहले तुम ब्रह्म की परिभाषा पर विचार करो। यह संस्कृत भाषा के दो पृथक शब्दों से बना है—

(१) बिरह और (२) मनन। बिरह का अर्थ है 'बढ़ना' और 'मनन' का अर्थ है सोचना। जिसमें बढ़ने और सोचने के लक्षण हों, वह ब्रह्म है। साधारण परिभाषा तो ब्रह्म शब्द का यह अर्थ बताती है और मैंने अभी कहा है कि ब्रह्म सत, चित और आनन्द है। परिभाषा या नाम का अर्थ तुमने जान लिया और तीनों गुण सत, रज, तम की दृष्टि से उसे सच्चिदानन्द गुणवाला प्रतीत कर लिया। इन के साथ तुम ज्ञानियों की दृष्टि से उसे अटल, आधार मात्र और कूटस्थ समान समझते हो। इन दोनों में बहुत भेद मानते हो। यह मत भेद यथार्थ में नहीं है। वह दृष्टि सृष्टि के भेद से है। ब्रह्म आधार भी है और निराधार होता हुआ धार भी है। धार पर दृष्टि जमाने से वह बढ़ता सोचता प्रतीत होता है और आधार पर दृष्टि जमाने से वह अटल प्रतीत होता है।"

"मैं फिर तुम्हें समुद्र के दृष्टान्त से समझाता हूँ। समुद्र में लहरें उठती रहती हैं। उनमें बढ़ने और सोचने का प्रबन्ध

पाया जाता है। इस प्रबन्ध पर ध्यान देने से ब्रह्म, सत, चित, आनन्द भासता है और इनसे अपने चित्त को हटालो, तो समुद्र अपने रूप में स्थित प्रतीत होता है। वह दोनों ही है और दोनों से न्यारा भी है। दोनों भाव ज्ञानी और भक्तों की दृष्टि में हैं। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि! न यह न वह। नेति-नेति! और ऐसा दृढ़ अनुमान और निश्चय हो जाने से चुप हो जाना पड़ता है। वाणी गूँगी बन जाती है, मन लूला हो जाता है और बुद्धि असमर्थ और निबल हो रहती है। थक थकाकर बैठ रहती है। यह आदर्श है।

कहां ब्रह्म है, वह कहां है? कहां है?
है क्या नाम उसका, कहां पर निशाँ है ॥ १ ॥
खुली ज्ञान दृष्टि से, देखे जो कोई!
समझ जाये उसको, यहां है वहां है ॥ २ ॥
वही धार है और आधार जग का।
उसी के सहारे यह ठहरा जहाँ है ॥ ३ ॥
यह सब में रमा, राम रमता है सब का।
अटल रूप बन कर, जहां का तहां है ॥ ४ ॥
जो तुम दूर समझा, बहुत दूर है वह।
निकट उसको समझो निकट तम महां है ॥ ५ ॥

छटा समुल्लास

(२) गरुड़ और कागभुशुण्डी का सम्वाद

ब्रह्म जगत, ब्रह्म मय जगत, जीव ब्रह्म की एकता।

गरुड़—"आपने जो कुछ कहा वह मेरी समझ में आ गया। आपके समझाने की युक्ति निराली है। ज्ञानी कहते हैं

यह जगत् ही ब्रह्म है या यह जगत् ब्रह्ममय है। इन दोनों बातों में क्या भेद है ?"

कागभुशुंडी—"क्या अच्छा प्रश्न है! इसका उत्तर भी अच्छा ही होना चाहिए। सुनो! कहा गया है 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'। एक ही ब्रह्म है और दूसरा कोई भी नहीं है और हो कैसे सकता है! जब ब्रह्म पूर्ण है तो वह पूर्ण ही होगा। दूसरा होगा तो उसकी पूर्णता या सर्व-व्यापकता को दोष लगेगा। एक से जब दो होगये तो दोनों के दोनों खंडित होगये। वह चाहे और कुछ हों लेकिन सर्व व्यापक नहीं कहलायेंगे। इस दृष्टि से कहा गया है कि "ब्रह्म सर्वम् केवलम्।" ब्रह्म ही सब हैं और वही अकेला है। उसके होते हुए दूसरे की सम्भावना नहीं होती, न हो सक्ती है। वह 'स्वयम्भू' आप ही सब कुछ हुआ हुआ है। 'अखिलम् इदम् ब्रह्म' वह पूर्ण सब का सब यही ब्रह्म है। वह सबका सोत है। सब में सोत प्रोत और ओत प्रोत है। जो सोत में है वही प्रोत में भी है।

उसमें है, तुम में भी है और हम में, सब में है वही।
काल के भूत और भविष्यत्, अब में तब में है वही॥

गरुड़—"यह तो मैं समझ गया। नियम यह है कि जो पूर्ण में है, वही उसके अंश में भी रहता है। समुद्र का जल खारा है। यह खारापन बूंद में भी है। ब्रह्म पूर्ण है, जीव जन्तु उसके अंश हैं। जो बात ब्रह्म में है वही उस ब्रह्म के जीव जन्तु में भी होनी चाहिए मगर ऐसा नहीं है। जैसे ब्रह्म में सुख है मगर जीव दुखी प्रतीत होते हैं इत्यादि।"

कागभुशंडी—"जिसको तुम नियम कहते हो वह नियम तुम्हारी अपनी दृष्टि से हैं। मैं यथार्थ को छोड़ कर तुम्हारी ही जीव दृष्टि से इस प्रश्न के उत्तर देने का प्रयत्न करता हूं। जो ब्रह्म में है, वही जीव में भी है।"

पहली दृष्टि—ब्रह्म में बिरह, मनन, अर्थात् बढ़ता सोचना है। ब्रह्म समुद्र के समान लहराता रहता है। यह लहराना इसकी धारों में है। जीवों में से कोई भी ऐसा न पाओगे, जो बढ़ता सोचता या बढ़ने वाला और सोचने वाला न हो। देवी. देवता, भूत. नर, जन्तु, पक्षी, बनस्पति आदि में से किसी को ले लो। सब बढ़ते और सोचते हैं।

यह बात अणु २ परिमाणु और कण तक में तुमको मिलेंगी। घास के तिनके से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त तुमको सब में यह लक्षण मिलेंगे।

दूसरी दृष्टि—सब में सत है, चित है, और आनन्द है। सत कहते हैं—अस्ति, जीवन और हैपनेको, चित कहते हैं—मन. बुद्धि और अहंकार को और आनन्द कहते हैं सुख को। यह तीनों के तीनों तुम सब में पाओगे। कोई मरना नहीं चाहता। कोई भूखे रहना नहीं चाहता। कोई दुखी रहना नहीं चाहता। जिसका चाहे देख लो, परख लो। बुद्धि की कसौटी पर कस लो। मनुष्य और पशु पक्षी तक को जाने दो। वह सच्चिदानंद है। बनस्पति के एक छोटे पौधे लाजवंती को देखो; तीनों बातें उसमें मिलेंगी। वह जीवित रहना चाहती है। किसी की छाया को देख कर सिकुड़ जाती है। छाया के हटने पर फिर अपने पत्ते और टहनीं फैला देती है। इसमें सत (अस्ति) चित (विचार) और आनन्द (सुख) के लक्षण तुमको मिलेंगे। यही दशा सारे ब्रह्मांड के टुकड़े टुकड़े में प्रतीत होगी।

तीसरी दृष्टि-किसी कारण से तुमने अपने आपको छोटा मान लिया हो। लेकिन छोटा रहना नहीं चाहते। दस मिलते हैं तो बीस की इच्छा है। यहां एक भी तो प्राणी नहीं है जो छोटा दशा में रहने का इच्छुक होगा। दृष्टि को फैलाकर देखलो

और सब इसी काम में लगे हुये रहते हैं। कारण यह है कि यह जगत् ब्रह्म है, ब्रह्ममय है और ब्रह्म रूप है।"

गरुड़जी बोले, "प्रभो! सब तो प्राणी नहीं कहलाए जा सकते?"

कागभुशुंडी—'क्यों नहीं? जगत् मात्र को तुम प्राणी कह सकते हो।"

गरुड़—"क्या मिट्टी के कण भी प्राणी हैं?"

कागभुशुंडी—'जिसमें प्राण हो वह प्राणी और जो प्राण से सांस लेता हो, वह प्राणी है। यहां अणु-अणु तक प्राणधारी, प्राणी और प्राण (सांस) लेने वाले हैं। वृक्ष सांस लेते हैं। जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश सब में प्राण है। इस प्राण के बिना कोई भी नहीं है। तुम सुन चुके हो कि विष्णु की संतति देवी, देवता, शिव की संतति-भूत-वैताल और ब्रह्मा की संतति-जीव-जन्तु है। इनमें से तुम किसको प्राण रहित पाते हो? यह प्राण ही तो धार है जो आधार ब्रह्म से निकलती है और उसी में इस रचना का प्रबन्ध होता रहता है।

गरुड़—"तो आपकी दृष्टि में सब चैतन्य ही चैतन्य हैं, जड़ पदार्थ कोई भी नहीं है?"

कागभुशंडी-"जड़ और चेतन दो उपेक्षित शब्द हैं। जिनकी अस्ति केवल उपेक्षता के स्थल में है और वह मनुष्य की दृष्टि से है। मनुष्य जिसमें हिलने डोलने की प्रत्यक्ष शक्ति देखता है, उसे चैतन्य कहता है और जिसमें इस शक्ति का अभाव देखता है उसे जड़ कहता है। जड़ पदार्थ में हिलना डोलना है। यह उनके परिमाणुओं में है। आज तुम एक लकड़ी के टुकड़े को हिलता डोलता नहीं पाते, लेकिन उसके अन्तर के परिमाणु हिलते डोलते रहते हैं। लकड़ी की जो अवस्था आज

है वह दस वर्ष में न रहेगी। वह बदल कर कुछ की कुछ हो जायगी। इस अदल बदल की अवस्था के अन्तरगत हिलने डोलने का अभाव नहीं है। उपेक्षित दृष्टि से अपने समझने बूझने के लिए या समझाने बुझाने के लिए यह दो कल्पित शब्द गढ़ रक्खे हैं। नहीं तो जड़ चेतन दोनों ही निरर्थक शब्द हैं। यह जगत् ब्रह्म है और ब्रह्म मय है।"

गरुड़—"जगत् को आप ब्रह्म कहते हैं। यह किस दृष्टि से है ?"

कागभुशुंडी—"जगत शब्द संस्कृद धातु, 'गम' से निकला है जिसका अर्थ चलना है। जो चले और चलायमान हो वह जगत है। यहाँ तुम जो कुछ देखते हो, वह सबका सब चलायमान है। इस दृष्टि से इस प्रपंच को जगत कहते हैं।"

गरुड़—"क्या आत्मा भी चलायमान है ?"

कागभुशुंडी—"यह तुम आप सोच लो! तुम आत्मा हो और चलायमान हो। जो जगत में रहता है, सब का सब चलायमान है। आत्मा संस्कृत धातु (अत) (हिलना, डोलना) और मनन (सोचना) से बना है। वह आत्मा की परिभाषा आप बता रही है कि जिसमें हिलना, डोलना और सोचना हो वही आत्मा है दूसरा आत्मा क्या होगा ? और कैसे होगा ? इच्छा, ज्ञान, सुख, दुख, आदि सब आत्मा में हैं और इन सब के अन्तर में धस कर विचार करो तो सब के सब हिलते डालते और समझते बूझते हुये प्रतीत होंगे।"

गरुड़—"आत्मा में और ब्रह्म में क्या भेद है ?"

कागभुशुंडी—"शब्द के अर्थ को विचारो। भेद प्रत्यक्ष हो जायगा। जो हिले, डोले, सोचे विचारे, वह आत्मा (अत और मननवाला) और जो बढ़े और सोचे वह ब्रह्म (ब्रह्म

और मननवाला) दोनों ही एक हैं। इनमें कोई भी भेद नहीं है। वह दोनों भी उपेक्षिक दृष्टि से मनुष्य ने दो शब्द गढ़ लिये। एक आत्मा दूसरा ब्रह्म (परमात्मा)। एक बड़ा दूसरा छोटा। एक अल्पज्ञ दूसरा सर्वज्ञ। एक ब्रह्मांड में व्यापक दूसरा पिंडांड में व्यापक। यह समझने बूझने की दृष्टि से है। नहीं तो जो समुद्र है, वही बूँद है। बूंद बिना समुद्र नहीं। समुद्र बिना बूंद नहीं। दोनों समान हैं।"

गरुड़—' तो जीव, ब्रह्म में कोई भेद नहीं है ?"

कागभुशुंडी–"नहीं ! कोई भी नहीं ! जीव ब्रह्मो भेद किम् !"

गरुड़---"जीव ब्रह्म कैसे हो सकता है ?"

कागभुशुंडी--"जैसे छोटा मनुष्य बड़ा हो जाता है।"

गरुड़—"यहां बड़ाई छोटाई के भाव का परित्याग है। आप कहते हैं यह जीव ही ब्रह्म है।"

कागभुशुंडी—"तो मैं बुरा या झूंठ क्या कहता हूँ ? जीव ही के भाव में छोटाई बड़ाई रहती है। जीव ही व्यापक, अव्यापक और सर्व व्यापक की समझ रखता है। जीव ही समझता है कि ब्रह्म क्या है और जीव क्या है। जिस बर्तन में जो वस्तु रक्खी जाती है वह बरतन छोटा होता है या बड़ा होता है ? ब्रह्म का भाव ब्रह्म में है या जीव में है ? ब्रह्म का भाव किस में समाया हुआ है ? किस में उसके समाने की सम्भावना है ? इसी एक बात के समझ लेने से अच्छे प्रकार दृढ़ विश्वास हो जायगा कि जीव के भाव में ब्रह्म बसता है और यह जीव तुच्छ नहीं है जैसा कि लोग समझते हैं। ब्रह्म में जीव बसता है वैसे ही जीव में ब्रह्म भी बसता है।"

बूंद समाना सिन्ध में, प्रगट दृष्टि से देख।
सिन्धु समाना बूंद में, भाव चक्षु से लेख ॥ १ ॥

सिन्धु बूंद की एक गति, एकहि एक समान।
जीव और ब्रह्म अभेद हैं, जाने सन्त सुजान ॥ २ ॥
बुंद सिन्धु की गति परखि, प्राप्त हुआ गुरु ज्ञान।
गति मति दोनों खो गईं, सोई पद निर्वान ॥ ३ ।
तब लग जीव में क्रोध है, लोभ, मोह, अहंकार।
तब लग जीव के भाव मे, व्याप रहा संसार ॥ ४ ॥
मोह, लोभ, मद, काम को, मेट दिया सह मूल।
अब नहिं जीव में भरम है, सहै न सुख दुख सूल ॥५॥
सरल सुगम है बात यह, लखि पावै कोई साध।
साधन अनुभव में रमै, उसका मता अगाध ॥६॥
अणिमां,महिमा जीव में, गरिमा लघिमा, खान।
इनसे जब न्यारा भया, जीव है ब्रह्म समान ॥७॥

सातवाँ समुल्लास

अवतार विषय

अवतार कैसे होता है ?

गरुड़—"जीव ब्रह्म एक है, नाम रूप का भेद है। जीव ब्रह्म है, ब्रह्म जीव है। जीव ब्रह्म पूर्ण हैं। पूर्ण में सब ही कुछ रहता है। जीव को बूँद ही समझ लिया जाय, तब भी कोई हानि नहीं है; क्योंकि समुद्र की सारी शक्ति एक एक बूँद के पीछे हर समय लगी रहती है और उसकी सहायक बनी रहती है। बूँद कभी समुद्र से न्यारा नहीं हो सकता। मिला जुला रहता है। यहाँ तक तो ब्रह्म जीव का द्वैत पक्ष है। जब यह जीव अपनी कल्पना, साधना और सोच विचार से ब्रह्म में निमग्न हो जाता है तब

यह द्वैत की प्रथकता का अभाव और नहीं तो मानसिक दृष्टि से जाता रहता है और दोनों एक समान प्रतीत होने लगते हैं। यह बात मेरी समझ में आगई।

यही दशा प्रकाश की भी है। किरणें सूर्य से निकलती और संसार के स्थल में खेलती हैं। एक एक किरण के पीछे सूर्य की सारी प्रकाश शक्ति रहती है। द्वैत पक्ष में किरण और सूर्य दो हैं। यथार्थ में तत्त्व दृष्टि से एक ही हैं। यह बात भी मेरी समझ में आगई।

ऐसे ही मैं जिस जिस पदार्थ की तरफ ध्यान देता हूँ सब अपने सोत या भण्डार के रूप ही प्रतीत होते हैं और इससे अलग नहीं बल्कि अलग मिले जुले ज्ञात होते हैं। इस बात का अनुभव होगया।

"अब आप आज्ञा दें तो मैं इसी दृष्टि को लिये हुए अवतार विषय में आप से प्रश्नोत्तर करूँ।"

कागभुशण्डी—गरुड़जी की बाणी सुनकर प्रसन्न हुए।

"आप सब कुछ समझते बूझते हो। मुझे सन्मान देने के निमित्त मुझ से यह प्रश्न करते हो और आज्ञा माँगते हो।

'एवमस्तु! जो कहना चाहते हो कहो। असमंजस करने या आगा पीछा करने की आवश्यकता नहीं है।"

गरुड़—"भगवन्! व्यापक ब्रह्म का उतार किसी अमुक शरीर में कैसे होता है? वह कैसे अवतार कहलाने लगता है।"

कागभुशुंडी—"तुम्हारा शरीर एक है। इस शरीर के अन्दर मन एक है जो ऊपर से लेकर नीचे तक इसमें व्यापा हुआ है। यह तो तुम समझते हो। अब यों विचार करो कि साधारण रीति से मन की धार तो सारे शरीर में स्वाभाविक

फैली हुई है। जब शरीर के किसी अंग को अधिक बल लेना होता है, तो उसी मन की धार अधिकता के साथ उस अंग में असाधारण रूप से आजाती है अर्थात् उस अंग में मन की विशेष धार का उतार होता है और वह बलवान् होकर उस समय उस अंग का काम कर देता है। तुम चाहो तो उस समय के लिये उस अंग को मन का अवतार कह सकते हो। यह व्यवहार तुम्हारे शरीर में दिन प्रति दिन होता रहता है।

योंहीं यह ब्रह्माण्ड ब्रह्म का शरीर है। इस ब्रह्माण्ड रूपी देह में ब्रह्माण्डी मन की धार साधारण रूप से सारे ब्रह्माड में पोटी और फैली हुई है और उसी के आधार पर सृष्टि का खेल हो रहा है। इस ब्रह्माण्ड में जितने जीव जन्तु आदि हैं उसी के अंग और अंश हैं, जैसे तुम्हारे शरीर के सारे टुकड़े उसी शरीर के अंग और अंश हैं। जब ब्रह्माण्ड के किसी भाग में कोई विघ्न होजाता है तो उसके दूर करने के लिए ब्रह्म की विशेष शक्ति उस अंश या अंग में उतर कर उस विघ्न का नाश करके फिर अपने अन्तर में लौट जाती है। वह उतरी हुई शक्ति विशेष है और इसी विशेषता की दृष्टि से उसका नाम अवतार हो जाता है।

समझ लो! तुम किसी पत्थर को उठाना चाहो तो यों नहीं उठा सकते। अपने शरीर के विशेष बल को चाहते हो। यह बल शरीर में है। उस समय वह तुम्हारे हाथों में अधिकता के साथ उतर आता है और तुम पत्थर को सुगमता और सरलता से उठाकर फेंक देते हो या उससे काम ले लेते हो। अवतार विषय इसी प्रकार का है और इसी प्रकार होता है।

एक हाथ ही का उदाहरण क्यों लिया जाये। हाथ, पांव,

आँख, कान नाक सब में आवश्यकता के समय शारीरिक और मानसिक शक्ति का उतार हुआ करता है।

जो दशा पिंड की है वही ब्रह्मांड की भी है। "पिण्डे सो ब्रह्माँडे" जो नियम पिंड में काम करता है, वही ब्रह्माण्ड में काम करता है। उसमें नाम के लिये भी भेद नहीं है और उसका समझना बूझना भी कठिन नहीं है। हाँ, जो प्राणी भ्रम ग्रस्त हो जाते है और वह भी अगर पक्षपाती नहीं है और पक्ष के अहंकार में जकड़े हुए नहीं है, तो समझाने बुझाने से इसे बड़ी सरलता और सुगमता से समझ जाते हैं।

देखते हो जैसा तुम ब्रह्माँड में।
वैसी ही रचना है, इस पिंडाण्ड में॥
दोनों ही हैं एक जैसे ए गरुड़॥
एक अवस्था जैसे तैसे ए गरुड़॥
बात समझाने की थी समझा दिया।
इसमें कठिनाई नहीं जतला दिया॥

आठवाँ समुल्लास

अवतार विषय (लगातार)

राम अवतार

गरुड़ ने पूछा—"राम अवतार क्यों हुआ?"

कागभुशुंडी ने उत्तर दिया—"दशरथ दस अंगों वाला शरीर है। यह विषयासक्त था। राम उसमें प्रगट हुए। सोचा विचारा। ये दशरथ क्यों इतना मूढ़ है? बात समझ में आई। दशरथ की दस इन्द्रियों में रजोगुण की प्रबलता है। इस रजोगुण की जड़

मस्तिष्क में है। वहां इसकी मुख्यता है। उसका बल दशरथ को मिलता है और उसी ने इसे विषयासक्त, कामासक्त और तमासक्त कर रक्खा है। रजोगुण की प्रधानता दूर कर दी जावे, तो इसकी मुक्ति हो जाये। रजोगुण का नाम रावण है। जो संस्कृत धातु रू (रोने वाले) से बना है। यह सदा रोता झींकता रहता है। तोड़ फोड़ मरोड़ करता रहता है। शरीर के दशों रथों की मुख्यता या उनका मुख्य अंग इसी दृष्टि से उसे दशमुख, दशशीश, दसग्रीव इत्यादि कहते हैं। मनुष्य शरीर को लाख कष्ट दे, जप तप की साधना करे, यह न मरैगा। मस्तिष्क पर चढ़ कर जब इसका नाश किया जावेगा, तब यह मारा जायगा। राम ने ऐसा सोचा। लंका (मस्तिष्क) पर चढ़ाई की। वहां उसे मार गिराया और सीता को लेकर फिर अवध में आकर राज किया। रजोगुण के मारने के निमित्त राम का अवतार हुआ।"

गरुड़--"राम ने लंका पर चढ़ाई की थी। मस्तिष्क से उसका क्या सम्बन्ध है?"

कागभुशुंड—"लंका शब्द संस्कृत धातु 'लक' से बना है। इसका अर्थ है—माथा ललाट, पाना, प्राप्त करना आदि। संस्कृत का कोष देखकर अपना संतोष करो। मनुष्य की सारी शक्तियों की जड़ उसके सिर में रहती है। उसी को लंका कहते हैं। शरीर के नीचे भाग में उसका भास और उसकी छाया रहती है।"

गरुड़—"राम मनुष्य हैं। उनकी तीन मातायें हैं और तीन ही भाई हैं। इसमें क्या रहस्य है?"

कागभुशुंडी—"यह सच है, राम मनुष्य हैं। मनु की संतति हैं। मनु से उत्पन्न होने के कारण वह मनुष्य कहलाते हैं।

मनु शब्द संस्कृत धातु मन से निकला है। जिसका अर्थ है "समझना-बूझना, जानना पहिचानना"। राम समझने वाले, बूझने वाले, जानने वाले, और पहिचानने वाले हैं, इसलिए मनुष्य हैं।

उनकी तीन माता कौशल्या, सुमित्रा और केकैई हैं। कौशल्या संस्कृत शब्द कुशल (शुभ, आनन्द सम्मान आदि) से बना है। यह सत् है। सतो गुणीवृत्ति है जो शरीर में रहती है।

केकैई संस्कृत शब्द 'के (चिल्लाना, शोर करना) से निकला है। यह तम है तमोगुणीवृत्ति है, जो शरीर में रहती है।

सुमित्रा संस्कृत शब्द सु=(अच्छा) मित्र (सहकारी) से बना है। वह रज है और रजोगुणी वृत्ती है जो शरीर में रहती है।

दशरथ की यह तीन रानियां हैं। कौशल्या सत, केकैयी तम और सुमित्रा रज है। सत और तम अलग-अलग हैं और सुमित्रा सत और तम दोनों से मिली जुली हुई रज और दोनों से अलग या सम्मिलित हैं। इसी से उसका नाम सुमित्रा रक्खा गया। न सत काम करता है, न तम काम करता है। इन दोनों में क्रिया शक्ति नहीं है। क्रिया शक्ति केवल रज या रजोगुण में है। जब यह सत और तम से मिलती है तब वह क्रिया वाली होती है। इन तीनों का पता उनके नामों के विचार में है।

अब तुम इनका रूप देखो, तब सत तम और रज की समझ आवे। मैं पहले भी समझा चुका हूं। दूसरी बार फिर इनका चित्र दिखाता हूं। जिससे यह तीनों गुण जिनकी लीला पर सृष्टि का प्रबन्ध निर्भर है, तुम्हारी समझ में आजाये।

सत — उज्वल, शुद्ध प्रकाश, ज्ञान, आनन्द

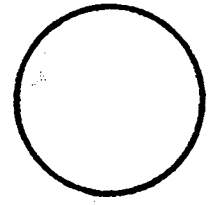

कौशल्या राम की माता एक पुत्र वाली ।

रज-रंग-विरंगी, मिली जुली प्रकाश-अन्धकार युक्त, ज्ञान-अज्ञान, सुख-दुख ।

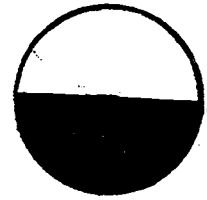

सुमित्रा लक्ष्मण और शत्रुहन की माता, दो पुत्र वाली ।

तम — काला, मलीन, अन्धकार, सूक्ष्मता उदासीनता ।

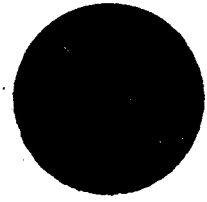

केकैई भरत की माता, एक पुत्र वाली ।

अब इनकी सम्मिलित अवस्था का चित्र देखो।

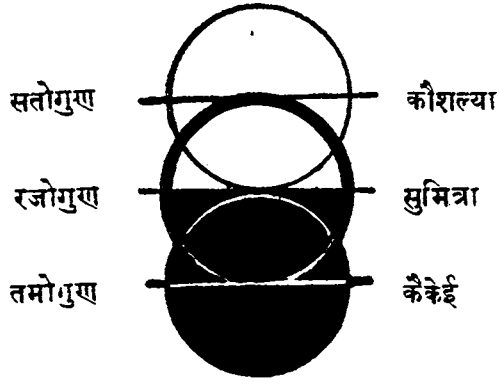

रजोगुण (सुमित्रा) ने आधा भाग सतोगुण (कौशल्या) का घेर रक्खा है और आधा भाग तमोगुण (कैकेई) का घेर रक्खा है। वह दोनों में मिला जुला है।

राम के तीन भाई हैं, यह भी सच है।

इनके नाम हैं भरत, लक्ष्मण और शत्रुहन।

भरत तमोगुणी और तमोगुण के अंशधारी हैं। लक्ष्मण और शत्रुहन रजोगुणी और रजोगुण के अंशधारी हैं।

राम कौशल्या (सत्) के एक पुत्र हैं। सत में एक ही वृत्ती होती है और वह ज्ञान प्रकाश की वृत्ति है, जिसमें क्रिया (कर्म) का अंश नहीं होता।

भरत केकैई (तम) के एक पुत्र हैं। इस तम में एक ही वृती होती है और वह अंधकार, मूढ़ता और उदासीनता की वृत्ति है जिसमें क्रिया (कर्म) का अंश नहीं होता।

लक्ष्मण और शत्रुहन सुमित्रा (रज) के दो पुत्र हैं। इस

रज को दो (द्वन्द) गति और वृत्ति होती है। और वह दुविधा और दुचिता वृत्ति है, जिसमें क्रिया (कर्म) शक्ति है, जो उस रज का अंश कहलाती है।

जब राम के साथ लक्ष्मण होते हैं, तब ही वह क्रिया संयुक्त और कर्म आरूढ़ होते हैं। वैसे नहीं। जब भरत के साथ शत्रुहन रहते हैं तब ही वह क्रिया कर्म वाले होते हैं, वैसे नहीं। यही कारण है कि रज, रजोगुण या रजोगुणी (सुमित्रा) के दो पुत्रों में से लक्ष्मण राम के साथ और शत्रुहन भरत के साथ किये गये।

ऐ गरुड़! यह राम की कहानी का महत्त्व है जो मैंने तुमको समझा दिया। राम की माताओं और भाइयों और पिता का भेद बता दिया। इसे विचारो, तब राम अवतार का विषय तुम्हारी समझ में आयेगा।"

गरुड़जी इस रहस्य को सुन कर बहुत प्रसन्न हुए।

नवां समुल्लास

अवतार विषय (लगातार)

तीन-तीन का निर्णय

गरुड़--"आपने बड़ी कृपा की जो इस गुप्त रहस्य को समझा दिया। मैं देखता हूँ कि राम कथा में सब जगह तीन ही तीन का प्रसंग है। इसका क्या कारण है?"

कागभुशुंडी--"जैसे?"

गरुड़--"जैसे राम की तीन मातायें, राम के तीन भाई, राम के तीन गुरू, राम के तीन शत्रु, राम के दल की तीन प्रकार की सेना इत्यादि।"

कागभुशुंडी—"राम की कहानी में विशेष कर के सत, रज, तम की कथा है। यह कथा त्रिगुणात्मक कहलाती है। राम ने रजोगुण रावण को मारा, तमोगुण कुम्भकर्ण का नाश किया, सतोगुण विभीषण को लंका का राज दिया, इस कथा का मुख्य अभिप्राय है।

राम ने खरदूषण और त्रिशिरा को मार गिराया। खर कहते हैं 'गधेपने' को। दूषण कहते हैं तम के दूषण को' और त्रिशिरा 'तीन सर वाला' सत, रज, तम के तीनों सम्मिलित रजोगुणी अहंकार को।

राम ने तीन प्रकार की सेना इकट्ठी की—राक्षस, बन्दर, और रीछ।

राक्षस-विभीषण-सतोगुणी लेकिन अज्ञानी मन की वृत्ति है। रीछ, जामवन्त तमोगुणी लेकिन मूढ़ मन की वृत्ति है। बन्दर हनुमान रजोगुणी लेकिन चंचल मन की वृत्ति है। ऐसा क्यों किया गया? क्योंकि जब तक मन की तीनों वृत्तियां इकट्ठी नहीं होती, चित्त में एकाग्रता नही आती।

गुरुओं में—वशिष्ठ, तमाकार आरूढ़ दृढ़ वृत्ति है।

विश्वामित्र—रजाकार विश्व के प्रेम की वृत्ति है।

अगस्त्य—सत्याकार, सत के राज की वृत्ति है।

इस प्रकार आरम्भ से अन्त तक सत, रज, तम का रूपक अनेक भांति से दिखाते हुए राम का अवतार हुआ है।"

गरुड़ ने पूछा—"सीता क्या है?"

कागभुशण्डी ने उत्तर दिया—"सीता सुषुम्ना नाड़ी नामक लकीर का नाम है, जो जनक रूपी मन के हल जोतने (विचार, योग और विवेक साधना) से उत्पन्न होती है। शूर्पणखा की

नाक काटने के दोष से राम पर रजोगुण छापा मारकर उस सुषुम्ना वृत्ति को छीन ले जाता है। राम उदास होकर जंगल २ उसकी खोज में मारे २ फिरते हैं। अन्त में भक्ति की सूझती है। वह शवरी भीलनी है जिससे राम मिलकर सीता का पता पूछते हैं और वह कहती है कि पम्पापुर में जाकर सुग्रीव (बन्दर चन्चल मन) से मित्रताई कीजिए। वह सीता की खोज लगा देगा और ऐसा ही हुआ।

इस चन्चल मन में तीन वृत्तियां हैं। हनुमान (सतोगुणी) सुग्रीव, (रजोगुणी) और अंगद, (तमोगुणी)।

यों राम की कहानी का त्रिगुणात्मक प्रबन्ध हुआ है।"

दसवां समुल्लास

अवतार विषय (लगातार)

दश अवतार चरित्र

गरुड़ ने पूछा—"अवतार केवल राम के रूप में होता है या और भी रूप में हुआ करता है?"

कागभुशुण्डी हंसे—"भगवन्! विष्णु के वाहन होकर आप हँसी २ में ऐसा प्रश्न मुझसे कर रहे हैं। जानने को आप सब कुछ जानते हैं। सम्भव है हमारे और दूसरे प्राणियों के कल्याणार्थ आप ऐसा प्रसंग छेड़ रहे हैं।"

गरुड़—"प्रभो! आपने मन का उदाहरण देकर यह कहा था कि जैसे मन की धार हाथ पांव और शरीर के दूसरे अंगों में उतर कर अवतार धारण करती है, क्या ब्रह्म का अवतार भी ऐसा ही करता है?"

कागभुशुण्डी हँसे—"यह अच्छा प्रश्न है। न जिसका सर न

पैर। मैं फिर भी संक्षेप से उसका उत्तर देता हूँ। जैसे रामचरित्र में दशरथ दशमुख का प्रसंग है वैसे ही अवतारों में दश अवतार ही मुख्य समझे जाते हैं। इनमें से मनुष्य अवतार शिर में ब्रह्म की धार के उतरने का चरित्र है। कच्छप अवतार देह में इसकी धार के उतार का वृत्तान्त है। वामन अवतार में पाँव की महिमा है। आपके प्रश्न में सिर, पैर, कोई नहीं था। मैंने शिर पैर शरीर का सम्बन्ध दिखा दिया। अब और कुछ पूछना चाहते हैं, तो पूछिये।"

गरुड़—"यह अवतार दस ही क्यों हैं?"

कागभुशुंडी—"यथार्थ में तो अवतार नौ ही हैं। दसवां अवतार तो उलट फेर है। अवतार एक, दो, तीन चार नहीं बल्कि करोड़ों हैं।"

नाना भांति राम अवतारा।
रामायण शत कोटि अपारा॥
कल्प भेद हरि चरित सुहाये।
भांति अनेक मुनीशन गाये॥

गरुड़—"प्रभो! आपकी वाणी सुन कर मेरे अन्तर में अब संशय तो नहीं उत्पन्न होता। हां, प्रश्न पर प्रश्न उठते हैं। आपने तो मुख्य अवतार बताये हैं। पहले दस बताये थे। इन नौ अवतारों का रहस्य क्या है?"

कागभुशुंडी—'वही तीन का तीन' तीन को तीन से गुणा करो तो नौ हो जाते हैं। इस तीन की दृष्टि से मुख्य अवतार तीन ही हैं। (१) मीन (मछली) (२) नरसिंह (३) राम।

अवतार का विषय समुद्र है। इस समुद्र में जितनी तैराकी करते चलोगे उतने ही मनोहर दृश्य आंखों के सामने आते रहेंगे। मैं विशेषतर आपका समय लेना नहीं चाहता। आपको भ्रम था कि राम ब्रह्म के अवतार नहीं हैं। वह भ्रम तो जाता रहा। मेरी इच्छा यह है कि आप से राम चरित्र को सुनूं। आप लंका की रणभूमि में पधारे थे। आप सब कुछ जानते हैं। पहले आप आद्योपाँत उसे सुना दीजिये। तब मैं इस अवतार विषय पर अपने विचार प्रकट करूँगा। जब आप चरित्र सुना लेंगे, तब जो कुछ और आप पूछेंगे मैं कहे चलूंगा।"

गरुड़—"आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य और धर्म है। आप जो कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा। लेकिन अधिक नहीं तो कुछ थोड़ा बहुत कम से कम इस नौ अवतार पर प्रकाश डाल दीजिये कि मेरा साहस और उत्साह बढ़ चले। फिर मैं जो जो राम चरित्र जानता हूं, निवेदन कर दूँगा।"

कागभुशुंडी—"नहीं, यह प्रसंग पूर्वार्द्ध था। जब आप राम चरित्र सुना चुकोगे, उसके बीच-बीच में यह अवतार विषय अधिकता के साथ विचार में आता चलेगा और जो शेष रह जायगा वह राम कथा की समाप्ति के पश्चात् वर्णन किया जायेगा। वह आज के प्रसंग का उत्तरार्द्ध होगा।"

गरुड़जी ने कहा—"एवमस्तु!"

और दूसरे दिन के सत्संग में राम के वृत्तान्त सुनाने का प्रबन्ध सोचा गया।

ओ३म् भुवः

महारामायणम्

आरम्भ खंड बाल चरित्र

प्रथम भाग

ओ३म् भुवः

पहिला समुल्लास

दशरथ का संतति के लिये पुत्र यज्ञ करना

'अवध'[1], देश[2]! 'अयोध्या' राजधानी! इस देश और इस राजधानी में एक राजा राज करता था। उसके पास दस बहुमूल्य रथ[3] थे। वह इन्हीं रथों पर चढ़ता रहता था और उनका अभिमानी था। इस अभिमान के कारण उसका नाम दश-

---

(१) अवध—संस्कृत (अव) (न्यून) 'धा' (धारण करना) मनुष्य आयु।

(२) अयोध्या—संस्कृत (अ) (नहीं) युद्ध (लड़ाई) जिसमें लड़ाई न हो। मनुष्य शरीर जिसके सब अंग मिले जुले हुए बिना लड़ाई झगड़े काम करते रहते हैं।

(३) रथ—सवारी, संस्कृत धातु रम (खेल) से निकला है।

रथ[४] पड़ गया था।

नाम रूप साथ-साथ चलते हैं। जहां रूप रहता है ना भी वहां ही रहता है। बिना नाम के रूप नहीं और बिना रू के नाम नहीं होता। दोनों में परस्पर सम्बन्ध हुआ करता है जैसा जिसका रूप वैसा ही उसका नाम और जैसा जिसव नाम वैसा ही उसका गुण और वैसा ही उसका काम।

यथा रूपस्तथा नामः यथा नाम तथा गुणः

उसे अपने दसों रथों का ध्यान रहता था और उसक समय उन्हीं रथों की सम्हाल और रक्षा में व्यतीत हुआ करता था।

रात दिन उसको रथों का ध्यान था।
और उन्हीं का ज्ञान और अनुमान था॥
इन रथों को पाके दशरथ था सुखी।
रथ कभी बिगड़े तो होता था दुखी॥
वह इन्हें सिंगारता था रात दिन।
शांत था दस रथों की संख्या को गिन॥
इनपै चढ़ कर घूमता था वह नरेश।
फिरता रहता था सदा वह देश-देश॥

राजा दशरथ रघुकुल[५] में उत्पन्न हुआ था। जो मनु[६] क

(४) दशरथ--दस 'इन्द्रियों वाला मन रखता हुआ मनुष्य।।

(५) रघु—संस्कृत शब्द रवि (प्रकाश) से निकला है। प्रा व प्रकाश का दाता सूर्य ही है। इस कुल का नाम रघुवंशी, सूर्यवंश और हंस या भानुवंशी था।

(६) मनु (मन वाला) संस्कृत शब्द मन से निकला है। म की प्रधानता के कारण मनु की संतति मनुष्य कहलाती है।

तति और इक्ष्वाकु[1] वंश का था।

यह साहसी, पुरुषार्थी और पराक्रमी था। धर्म र्म का निर्वाह करता था। न्यायकारी था। इसके राज में जा बहुत सुखी थी। बलवान निर्बल को नहीं सताते थे और ंह और बकरी एक घाट में पानी पीते थे।

दशरथ को अपने भुजदण्ड पर बड़ा घमण्ड था। यह न्द्र[2] का सहायक था। इसमें एक दोष था। यह इन्द्रिय षय में बहुत आसक्त था। रात दिन उन्हीं के भोग विलास ी धुन में लम्पट रहता था। 'शुक्र' (वीर्यशक्ति) में विघ्न ागया था और कोई संतति नहीं थी।

इसका विवाह तीन रानियों से हुआ था। एक कौशल देश ी थी। इसका नाम कौशल्या[3] था। दूसरी केकय देश के ैकय राजा की पुत्री थी वह केकयी[4] कहलाती थी। तीसरी ध्यदेश की थी। वह सुमित्रा[5] नाम से विख्यात थी।

कौशल्या बड़ी और केकयी सबसे छोटी थी। सुमित्रा

---

(१) इक्ष्वाकु—संस्कृत 'इक्ष' (ईख-गन्ना) 'ई' (चलना) क्ष (इच्छा) 'क' (प्राप्त करना) यह राजा वैवस्वत मनु सूर्य का लड़का ा जो त्रेतायुग में राज करता था। इच्छाधारी होने से इसका ाम इक्ष्वाकु पड़ा।

(२) इन्द्र बिजली की शक्ति जो हाथों में रहती है। संस्कृत 'इन्द्र' बलवान बल रखने वाला) 'इदि' (बल) से निकला है।

(३) कौशल्या सतोगुण। संस्कृत 'कुशल' (उत्तम)।

(४) केकयी। तमोगुण। संस्कृत धातु 'के' (शब्द करना बुलाना)।

(५) सुमित्रा। रजोगुण। संस्कृत 'सु' (अच्छा) मित्र मीत)।

मंझिली थी। छोटी रानी काशमीर देश की लड़की होने के कारण बड़ी सुन्दर थी। दशरथ कौशल्या का मान और आदर-सत्कार तो बहुत करता था लेकिन केकयी के रूप पर मोहित था। उसी के भवन में विशेष कर रहता था। सुमित्रा की ओर इसका ध्यान नहीं था।

यह तीनों रानियाँ राजमहलों में रहती थी। कौशल्या और केकयी में सौतिया डाह था। वह एक दूसरी से नहीं मिलती थी। सुमित्रा बांदी के समान दोनों की सेवा करती रहती थी और दोनों से मिली-जुली रहती थी।

दशरथ वृद्ध होगया। लड़के वाले न होने से वह दुखी रहता था। रानियां भी दुखी थीं। जिस घर में पुत्र[1] नहीं होता, वह घर श्मशान भूमि के तुल्य समझा जाता है। पितृ ऋण का बोझ ऐसे घर वाले के सिर पर रहता है और उसका उद्धार नहीं होता। वह नरक को जाता है। जब पुत्र नहीं तो पित्रों के श्राद्ध[2] और तर्पण[3] कौन करै! और पितृ लोक में उनकी गति कैसे हो!

दशरथ को महा खेद था। उसने अपने मंत्री, गुरु वशिष्ठ[4]

---

(१) पुत्र—संस्कृत 'पुत' (नर्क जिसमें संतति रहित प्राणी ढकेले जाते हैं) और 'त्र' कहते हैं तारने वाले को। जो पुत नर्क से तारे वह पुत्र है।

(२) श्राद्ध – संस्कृत श्रद्धा (विश्वास) जो श्रद्धा के साथ पित्रों के नाम पर पिण्ड दान दिया जाता है यह श्राद्ध है।

(३) तर्पण संस्कृत 'तर' (तारना-उतारना) 'ण' (ऋण) पित्रों के ऋण उतारने के लिये जो दान दिया जाता है वह तर्पण है।

(४) वशिष्ठ – संस्कृत 'व' (पहिले) 'शास' (शिक्षा देना) गुरु।

ऋषि को अपना मन्तव्य प्रकट किया। गुरु ने कहा कुछ दिनों ब्रह्मचर्य्य[1] व्रत धारण करो। शुक्र[2] की दया हो तब पुत्र यज्ञ[3] का प्रबन्ध करो। जब अग्नि प्रकट होगी, पुत्र उत्पन्न होंगे। अग्नि के बिना कुछ न होगा। इस काम के लिये शृङ्गी[4] ऋषि की सहायता आवश्यक है।

राम ने गुरु की बात मान ली। कुछ दिन के लिये ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। स्त्रियों का संग त्याग दिया। 'ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यम्, योग का साधन करने लगा।

यह साधन क्या है? भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक के विचारों का परित्याग हो, ओ३म् से यह ढक जायें। केवल सावित्री (सूर्य्य) का ध्यान हो जो मनुष्य मात्र के घट में रहता है। यह अग्नि बल और पुरुषत्व की खानि है। जब तक यह सावित्री प्रकट नहीं होता या उसका साक्षात्कार नहीं होता उस समय तक अन्तर अग्नि प्रचंड नहीं होती। वीर्य इसी के अधीन है।

'भर्गो देवस्य धीमहि" उस सावित्री देवता के गुण, कर्म, स्वभाव और प्रभाव को साक्षात्कार होने पर धारण करो "धियो यो नः प्रचोदयात्" तब यह देवता तुम्हारी बुद्धियों का प्रेरक होगा और तब तुम में बल कर्म पुरुषार्थ और वीर्य आप ही आप उत्पन्न हो जायगा और जो कामना की जायगी सब सिद्ध हो जायगी।"

---

(१) ब्रह्मचर्य्य। ब्रह्म। ब्रह्म में चर्य्या करना। वीर्य का साधन और संचय। (२) शुक्र। वीर्य, धातु।

(३) यज्ञ। संस्कृत 'यज्ञ' (पूजा) जो पुत्र के निमित्त पूजा की जाये वह पुत्र यज्ञ है।

(४) श्रंगी। संस्कृत 'श्रंग' (शिखर, शिखा)।

दशरथ ने गुरु की बात मानली और सावित्री साधन में लगा।

भू है पृथ्वी उसके छोड़ा ध्यान को।
और भुवः के त्याग सब अनुमान को॥
लोकसुर के भाव को मन से निकाल।
धुन में सवितर के लगा रहने भुवाल॥
ओउम् से उसने दबा जब तीन लोक।
मिट गये हृदय के चिंता और शोक।
चमका दमका उसके घट सावित्री।
सिद्ध उसने कर लिया गायत्री॥
गुरु हुआ प्रसन्न चित और यों कहा।
कामना अब होगी सिद्ध संदेह क्या॥

सावित्री का यह साधन क्रिया योग है। यह आप अन्तरी यज्ञ है। जब शृङ्गी ऋषि आये, दशरथ के ध्यान को शिखा[1] श्रृङ्ग या उसकी चोटी की तरफ लगाया। सूत्रों का भेद उसे बताया। शिखा और सूत्र का भेद पाकर दशरथ पुत्र की कामना से यज्ञ करने लगा। अग्नि कुण्ड में श्रद्धा, प्रेम और भक्ति की आहुतियाँ दीं। अग्नि[2] देवता प्रकट हुए और एक बर्तन दिया, जिसमें खीर[3] भरी हुई थी।

---

(१) शिखा जीवन को सोती है। इससे जीवन की धार नीचे उतर कर नस नाड़ियों में दौड़ती है। इन्हीं नस नाड़ियों को सूत्र कहते हैं। शिखा और सूत्र योग विद्या का रहस्य है।

(२) अग्नि संस्कृत 'अग' (ऊपर जाना) और 'नी' (निरंतर देहता) यह मनुष्य या जगत का तेज है जो वीर्य और ओजस् के रूप में प्रकट होता है।

(३) खीर। वीर्य्य विशेष का आशय है।

दशरथ कौशल्या के भवन में गया। खीर का आधा भाग उसे दिया। केकयी के पास जाकर आधा उसे सौंपा और इन के भागों में से जो बचा खुचा था वह सुमित्रा को दिया। तीनों रानियां खीर को पाकर और खाकर गर्भवती होगईं। सूखी नहर में पानी आया। अयोध्या की वाटिका जो उजड़ी और सूखी होगई थी लहलहाने लगी। वृक्षों की टहनियों में हरियाली दौड़ गई और शाखे फूलफल से लदगईं। निराशता जाती रही। आशा के कौपलों के फूटते ही वह सारी हरी भरी दिखाई देने लगीं।

आस कर गुरु की दया की, हो निराश न तू कभी।
जो निराश हुआ समझ ले, गुरु का दास न तू कभी॥

अब अयोध्या में रात दिन चहल पहल होने लगी और वृद्ध दशरथ के शरीर की नस नाड़ियों में नया रक्त दौड़ने लगा।

दूसरा समुल्लास

संतति-उत्पत्ति

राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुहन

चैत सुदी नौमी की तिथि थी। शुभ मंगल का दिन था। शीतल, मंद, सुगंध वायु बह रही थी। सुहावनी ऋतु थी। पृथ्वी नाज, फल, फूलों से लदी थी। सब सुख और आनन्द में निमग्न हो रहे थे। उस दिन दशरथ के घर में चार पुत्र हुए—राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुहन।

राम कौशल्या के गर्भ से प्रकट हुये। राम के शरीर का रंग अलसी के फूल के प्रकार नीला था, जिसमें बिजली के डोरे

दौड़े हुए थे। लाल कमल सदृश नेत्र थे। हाथ की हथेलियाँ और पाँव के तलुवे भी लाल थे। नख से शिख तक सुन्दरताई के सांचे में ढला हुआ तन! लाल लाल होंठ! नीले कमल के समान फूले फूले गाल! उभरा हुआ माथा! लम्बे लम्बे हाथ! बैलों के रूप का कंधा। घूँघर वाले केश! लोग कहते थे यह कामदेव के अवतार हैं। और सच्ची बात तो यह है कि राम की सुन्दरताई पर करोड़ों कामदेव न्यौछावर किये जावें। राम[1] प्रेम की मूर्त्ति थे।

भरत[2] केकयी के पुत्र थे। देह का रंग काला था, जिससे बल की शक्ति धार बनकर फूट-फूट कर निकलती थी। यह सब में अधिक बलिष्ठ थे। धीर, वीर, गम्भीर! सारा शरीर कोमल सुन्दर और दृढ़ता के रस में पगा हुआ था। बचपन ही में बिना सोचे समझे कोई बात नहीं करते थे। शिव के समान यह वीर रस के आदर्श थे। बल और पराक्रम में इनसे बढ़ कर कोई नहीं था।

लक्ष्मण[3] और शत्रुहन[4] सुमित्रा के लड़के थे। दोनों गोरे रंग के थे। दोनों प्यारी-प्यारी मूर्त्तियाँ थीं। चित्त में चंचलताई विशेष थी। तोड़ जोड़ मरोड़ फोड़ से काम था। जो कोई देखता

(१) राम संस्कृत धातु "रम" (खेलना) राम का व्यौहार लीला मात्र खेल और रमण करने का था।

(२) भरत संस्कृत धातु भरी (पालना) पालन करना, भरत का व्यौहार पालन, पोषण मात्र था।

(३) लक्ष्मण संस्कृत धातु "लक्ष्" (देखना-निशाना मारना—लक्ष को आँखों के सामने रखना)

(४) शत्रुहन। संस्कृत धातु शत्रु (बैरी) हनन (मारना)

था गोद में उठाकर प्यार करने लग जाता था।

चारों राजकुमार दिनों दिन चांद के समान बढ़ने लगे। वह मिल जुल कर खेलते कूदते बाल लीला करते। देखने वाले सुखी होते। दशरथ का महल इनसे भरा हुआ प्रतीत होता था। महल रूपी सरोवर में यह चारों चार प्रकार के चलने फिरने वाले खिलते हुए कमल के पौधे थे।

राम और भरत दोनों लगभग एक स्वभाव के थे। इन दोनों में चंचलता और दुविधा नहीं थी। जब राम और भरत आमने सामने होते थे, तो भरत के शरीर का काला रंग राम के श्याम वर्ण पर छाया डालता था और वह काले दिखाई देते थे और राम की सांवली बिजली की छाया उनके काले शरीर पर चमक उठती थी। राम भरत और भरत राम जंचते थे। योंही जब चारों भाई एक साथ होते थे तो चारों रंगों की छाया एक दूसरे के तन पर पड़ कर वर्षा ऋतु के इन्द्र धनुष के रंगों का दृश्य दिखा देती थी।

इनका भयानप विचित्र था। यों तो चारों में प्रेम था लेकिन यह दो जोड़े बन कर रहते थे। राम के साथ लक्ष्मण और भरत के साथ शत्रुहन रहते थे। चाहे रात हो या दिन यह जोड़ा साथ-साथ रहता था। उस युग में कोई कपड़े लत्ते बहुतायत से नहीं पहिनता था। लोग विशेषकर नंगे ही रहते थे। कटि पर कपड़ा बँधा रहता था और चलते फिरते समय कोई-कोई चोला डाल लेता था जो गले की तरफ से फटा रहता था। सीने पिरोने का कोई नाम भी नहीं जानता था। सूई उन

नोट-राम में सतोगुणी, भरत में तमोगुणी और लक्ष्मण, शत्रुहन में रजोगुणी वृत्तियां थी। माताओं के स्वभाव का निचोड़ इनमें आगया था और यह सत तम और रज की जागती मूर्तियां थी।

दिनों में नहीं बनती थीं।

इन चारों का व्यवहार खेल में भी समान था। कभी किसी में अन बन नहीं होती थी और किसी के अनुचित काम का उलहना भी माताओं के कान तक नहीं पहुंची। यह बड़ी विचित्र बात थी।

कौशल्या और केकयी में सौति-सौति का डाह अधिकता के साथ था। इन दोनों में से कोई भूल कर भी किसी के पास नहीं जाती थी, लेकिन केकयी राम को बहुत चाहती थी और देखने में वह उन्हें भरत से अधिक प्यार करती थी। कौशल्या राम और भरत में कोई भेद नहीं जानती थी। यह इन रानियों के व्यवहार में बड़ी विशेष और विचित्र बात थी।

लक्ष्मण और शत्रुहन अपनी माता सुमित्रा के पास नहीं आते थे। लक्ष्मण राम के संग कौशल्या के यहाँ और शत्रुहन भरत के साथ केकयी के भवन में रहते थे। सुमित्रा इनकी तरफ से निश्चिन्त रहती थी। केकयी की गोद से भरत और शत्रुहन और कौशल्या की गोद से राम और लक्ष्मण चिपटे रहते थे। लोग कहते थे कि राम और लक्ष्मण कौशल्या के और भरत, शत्रुहन केकयी के पुत्र हैं। सुमित्रा की गोद पुत्रों से खाली है और वह देवी सुनकर मुस्करा देती थी। बुरा नहीं मानती; प्रसन्न चित्त रहती थी। कभी-कभी कौशल्या और केकयी के महलों में इन दोनों बालकों के देखने को चली जाया करती थी। यों दोनों जोड़े कभी-कभी आप सुमित्रा के महल में आ जाया करते थे।

लड़के बड़े हुए। दशरथ ने समयानुसार इनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहा। केकय देश के राजा ने भरत को अपने पास बुला लिया। भरत के साथ शत्रुहन भी कश्मीर चले

गये। राम भरत के चले जाने से उदास होगये। वशिष्ठ ने चाहा कि राम को कुछ पढ़ायें। त्रेता युग में लिखने पढ़ने की वह दशा नहीं थी जो अब है। वेद भी कलियुग ही के आदि में पुस्तकाकार बनाये गये। व्यास ने ऋषियों से सुने हुए वेद मन्त्रों को संग्रह करके एकत्रित किया था। लिपि या लिखने का प्रचार द्वापर के अन्त या कलियुग के आदि में हुआ था। उस समय केवल ऋषि वाणी को कंठाग्र कर लिया जाता था। यह पठन-पाठन था। हाँ! चौदह विद्यायें थीं।

तीसरा समुल्लास

राम वशिष्ठ का सम्वाद

राम का वैराग्य

राम की उदासीनता को देखकर दशरथ भयभीत होगये। बुढ़ापे में उसे संतति मिली थी। पहले वह अपने भोग विलास में आसक्त था। अब राम के मोह में फंस गया।

वशिष्ठ ने कहा—"आप चिंता न कीजिये, मैं राम को अपने घर ले जाऊँगा। समझ ऊँगा, बुझाऊँगा पढ़ाऊँगा। यह संभल जायेंगे और फिर खेलने कूदने लग जायेंगे। दशरथ बोला—"ऐसा ही कीजिये" और वह राम को अपने घर ले गये। उनकी पत्नी अरुन्धती राम को देख सुखी होगई। राम बहुत भोले भाले और सरल स्वभाव वाले थे। जो उन्हें देखता था अपने आपे को भूल जाता था।

घर लाकर वशिष्ठ राम का जी बहलाने लगे। चाहा कि वह खेल कूद में लगें। उस समय धनुष विद्या, सर्प विद्या, शस्त्र विद्या, गंधर्व विद्या आदि चौदह प्रकार की विद्याओं का

प्रचार था। राम ने इनकी तरफ से अपना मुँह मोड़ लिया। एक दिन वशिष्ठ जी ने पूछा—"राम, तुमको क्या चिन्ता है?" राम ने उत्तर दिया "मैं क्या कहूं! जिधर देखता हूँ दुख: ही दुख दिखाई देता है। दुख है इसमें कोई सन्देह नहीं है। प्राणी मात्र दुखी हैं। किसी को कोई दुःख है किसी को कोई दुःख है।"

"इस दुःख का कोई न कोई कारण अवश्य होगा। मैं उसे जानना चाहता हूं। जिसके जान लेने से दुखों से मुक्ति प्राप्त हो और सब सुखी रहें।"

"जिनको हम नहीं चाहते उनका मिलाप दुःख है। जिन्हें हम चाहते हैं उनका विछोह दुःख है। भरत हमको प्यारे थे वह नाना के घर को चले गये और मुझे दुखी कर गये। ऐ ऋषि! ऐसा क्यों हुआ? वह अयोध्या में क्यों नहीं रहे? कौनसी शक्ति है जो उन्हें यहां से खींचकर ले गई? वह भी मुझे छोड़कर नहीं जाना चाहते थे लेकिन चले गये। मुझे उनकी चिन्ता है।"

"मरना दुख है, जन्मना भी दुख ही होगा क्यों कि जन्म के साथ मरण लगा हुआ है। जो अन्त में दुख का कारण है वह आदि में भी दुख ही होगा। रोग दुख है, स्वास्थ्य भी अवश्य दुख ही का रूप होगा। स्वास्थ्य और रोग दोनों के रहने का पात्र यह शरीर ही है। यह शरीर स्वयं दुख हैं। यह द्वन्द्व भावनाओं का स्थल है। जहां द्वन्द्व पना वहाँ रात दिन खट पट मची रहती है। फिर कोई इस संसार में सुखी रह कैसे सकता है!"

"मुझे रात दिन यही चिन्ताएं सताती रहती हैं और मैं विद्याओं को भी सीखना नहीं चाहता!"

वशिष्ठ जी बोले —"ऐ राम! तुम्हारा कहना सच है।

यह संसार दुख सागर और भवसागर है। जैसे समुद्र में मोती, मूँगे, मछली, कीड़े सब कुछ होते हैं, वैसे ही संसार के दुख सागर में एक दो तीन नहीं बल्कि लाखों और अनगिनत दु.ख हैं और जैसे इस संसार के भवसागर में भव (होना) है, वैसे ही उन दुःखों के भवसागर की दशा है। यहाँ जो कुछ हो जाय वह थोड़ा है। अभी कुछ है और अभी कुछ। इसमें सतत परिवर्तन होता रहता है।"

'कभी निर्धन बने हैं हम कभी धनवान होते हैं।
अनादर में कभी अपने कभी सन्मान होते हैं॥
सवेरा दोपहर सायं समय है रात आती है।
कभी रोना कभी हंसना है मान अपमान होते हैं॥
बदलता रहता हैं संसार उसकी यह प्रकृति है।
कभी विद्या अविद्या ज्ञान और अनुमान होते हैं॥"

"लेकिन तुमने आप कहा है यह द्वन्द्व स्थल है। दो पना इस जगत् की गति का रूप है। जहाँ अशान्ति है शान्ति भी वहां ही रहती है। जहां प्राणी ईंधन के समान तापाग्नि से जलते रहते हैं, वहां टंडक देने वाली झील का शीतल जल भी रहता है। बंधन के साथ मुक्ति भी है और उलझन के होते हुये उसके सुलझाने की युक्ति भी रहती है।"

राम बोले—'यह सच है। महाराज! मैं इस द्वंद्व अवस्था के बंधन, मुक्ति, उलझन और उसके सुलझाने की युक्ति को घृणा की दृष्टि से देखता हूं। मुझे इन दोनों में से एक की भी इच्छा नहीं।"

वशिष्ठ जी छोटे बालक की समझ देखकर चकित हुये। समझ गये कि यह राम निःसन्देह कोई असाधारण व्यक्ति है,

जो मनुष्य योनि में आया हुआ है, नहीं तो ऐसा छोटा लड़का कभी ऐसी बातें नहीं कह सकता जिसके कथन में बड़े बड़े ज्ञानियों की वाणी लड़खड़ाती है।

वशिष्ठ ने पूछा—"तुम चाहते क्या हो ?"

राम ने उत्तर दिया—"क्या कहूं ! न कह सकता हूं, न चुप रह सकता हूँ।"

वशिष्ठ—"तुम चाह और वासना से छुटकारा पाने की इच्छा रखते हो।"

राम—"क्या इच्छा से विमुक्त होने की इच्छा, इच्छा न कहलायेगी ?"

वशिष्ठ—"कहने को तो मनुष्य सब कुछ कह सकता है लेकिन मैं इच्छा की जड़ काटने की इच्छा को इच्छा नहीं कहता, क्योंकि यह इच्छा किसी इच्छा के पालने की चाह नहीं है, बल्कि इच्छा के निर्मूल करने की इच्छा है।"

राम हँसे—"भगवन् ! आपके मुंह से जो शब्द निकलते हैं वह सब के सब इच्छा ही इच्छा हैं और आप फिर भी इच्छा को इच्छा कहना नहीं चाहते।"

वशिष्ठ—"सच है मन के मन्तव्य प्रकट करने के लिये इच्छा शब्द से बढ़कर और शब्द नहीं मिलता, लेकिन तुम मेरे अभिप्राय को समझते हो।"

राम—"हां, मैं समझता हूं। आप मुक्ति की इच्छा को इच्छा कहना नहीं चाहते क्योंकि वह इच्छा की जड़ काटने की कुल्हाड़ी है। जब मनुष्य मुक्त हो गया, तब सारी इच्छायें आप ही आप जाती रहती हैं। साबन मैल नहीं है, मैल काटने का मसाला है। साबन लगाने से मैल उतर जाता है और मैल के साथ यह साबन भी जाता रहता है। आप इसी दृष्टि से

निरइच्छा की इच्छा को इच्छा नहीं कहना चाहते।"

वशिष्ठ--"राम तुम देखने में बालक हो लेकिन ज्ञानियों में ज्ञानी हो। तुम्हारी डाढ़ी तुम्हारे पेट में है। जिस बात को मैं स्पष्ट रीति से नहीं कह सकता था. तुमने उसे मांझा देकर निर्मल कर दिया। मेरे कहने का मन्तव्य यही था।"

राम—"तो मैं इस मुक्ति की इच्छा की भी इच्छा नहीं रखता। यह भी जंजाल और माया जाल है।"

वशिष्ठ--"क्यों ?"

राम – "क्योंकि मुक्ति की इच्छा उपाय है, उपाय में साधन है। साधन कष्ट है। कष्ट को मैं नहीं चाहता।"

वशिष्ठ – "आपकी बातें विचित्र होती हैं। जो कुछ आप कहते हो वह सब का सब सच है। मैं आपकी बातों का उत्तर देने में असमथ हूं। आपका मस्तिष्क बहुत शुद्ध है और अंतःकरण महानिर्मल है। मेरी यह दशा नहीं है। मैं बड़ा भाग्य वाला हूँ कि आप मेरे होते हुए प्रकट हुए और मैंने आपका दशन पा लिया। लाभा था आपको पढ़ाने के लिये और आप मुझे पढ़ाने लग गये। आप अवतारक पुरुष और ब्रह्म के अवतार हो।"

राम मुस्कराये, अरुन्धती वशिष्ठ की पत्नी भी मुस्कराई और ऋषि राम की बुद्धिमानी देख कर चकित हुए।

चौथा समुल्लास

राम का वैराग लगातार

राम वशिष्ठ के घर में रहे दशरथ के पास नहीं गये। अरुन्धती उनकी सेवा और सुश्रूषा करती रही, जिसकी उन्हें

आवश्यकता नहीं थी। वह उदासीन थे। स्त्री और पुरुष दोनों ने उनके मन बहलाने के अनेक उपाय किये, उनका मन नहीं बहला और वह चुपचाप अकेले एक जगह में रह कर विचार निमग्न हो रहे।"

वशिष्ठ ने दशरथ के पास जाकर कहा—"राम को मैं शिक्षा नहीं दे सकता। वह गुरुओं के गुरु हैं। अपनी बातों से वह मुझे निरुत्तर कर देते हैं। मेरी बुद्धि काम नहीं देती।"

दशरथ ने राम को बुलाया—"यह दण्ड प्रणाम करके बाप के पास बैठ गये। कौशल्या आई, उसने इनका माथा चूमा और गोद में बिठा लिया। अरुन्धती भी राम के साथ आ गई थी।"

दशरथ ने कहा—"राम! तुम में भरत का प्रेम बहुत है, उनके काश्मीर चले जाने से दुखी हो। कहो तो कोई जाय और भरत को बुला लाये, लेकिन वह अभी रास्ते ही में होंगे। अपने नाना के पास भी न पहुँचे होंगे। मुझे संकोच भी होता है कि वह कैसे झट पट चले आवेंगे। मैं इतनी शीघ्रता के साथ उन्हें कैसे बुलाऊँ!"

राम—"पिताजी! आप सच कहते हैं कि मुझ में भरत का प्रेम है। उनके चले जाने से मैं दुखी हुआ। अब मुझे न दुःख है न सुख है। वह आनन्द से अपने नाना के पास रहें। भरत प्रेम की मूर्त्ति हैं। नाना जी उनको देखकर सुखी होंगे। मैं स्वार्थ वश होकर यह नहीं चाहता कि उनके सुख में विघ्न पड़े।"

दशरथ—"फिर तुम क्या चाहते हो?"

राम बोले—चाह नहीं चिंता नहीं, चाह दुःख की खान।
चाह करी चिंता भई, उपजा दुःख महान॥

चाह मिटी चिंता गई, मनुआ बेपरवाह।
जिसे किसी की चाह नहिं, वह शाहों का शाह॥

कौशल्या—चल बेटे ! मेरे साथ चल ! तू मुझे प्यारा है, मेरी आंखों का तारा है, मैं तेरे बिना नहीं रह सकती। वशिष्ठ जी तुझे मुझ से छीन ले गये थे। मैं तेरे बाप की आज्ञा भंग नहीं करती। क्या करती ! चुप हो रही। अब मैं तुझे आंखों की ओट नहीं करना चाहती। तू मेरा बेटा और मेरे कलेजे का टुकड़ा है। तुझको देखकर मेरी आँखों को ठंडक मिलती है और मेरी छाती शीतल होजाती है। राम ने माता के पांवों में अपना सर झुका दिया और उसने उन्हें छाती से लगा लिया।

दशरथ वशिष्ठ और अरुन्धती सब के सब सहमत थे। कौशल्या उठी। राम का हाथ पकड़ कर अपने महल में ले गई। लक्ष्मण तो उनके साथ रहते ही थे, वह भी चले गये।

दशरथ वशिष्ठ और अरुन्धती तीनों ने समझा कि बच्चे के लिये माता का प्यार सब से बढ़ कर पदार्थ है, राम उसके पास रहकर अपने वैराग को भूल जायेंगे।

कौशल्या दोनों लड़कों को घर लाई, न्हलाया, धुलाया माथे पर चन्दन लगाया, देवी देवता की पूजा की और राम लक्ष्मण को खिलाया-पिलाया, संतुष्ट किया और खाट पर सुला दिया।

लेकिन राम में गहरा वैराग था। माता का प्रेम भी उसे नहीं दबा सका। खेलना कूदना सब छूट गया। वह चुप चाप बैठे हुए विसूरते रहते थे। उनके हृदय में कैसे-कैसे और क्या-क्या विचार उत्पन्न होते थे इसका किसको पता था। माता ने बहुत कुछ प्रयत्न और परिश्रम किया कि उनका मन बहल जाये लेकिन उसे बहलना नहीं था, नहीं बहला। वह दुखी

हुई। अपने भाव को छुपा रक्खा कि राम पर उसका प्रभाव न पड़े।

कई दिन इसी प्रकार व्यतीत हुये। माता ने एक दिन रात के समय विवश होकर उनसे पूछा--"बेटे! तू क्या चाहता है?"

राम बोले--"मैं क्या चाहूँ! कुछ नहीं। मेरे चाहने से क्या होगा! देख ऊपर चाँद चमक रहा है, मैं उसे लेना चाहता हूं। क्या मेरा नन्हा हाथ उस तक पहुंच सकेगा! न हाथ वहाँ तक पहुँचेगा न वह चमकीली गेंद मेरे हाथ में आयेगी। इसलिए मेरा चाहना और न चाहना बराबर है।"

कौशल्या--"उपाय से और साधन से सब कुछ सम्भव है"।

राम--"अच्छा! तू मेरे लिये इस चाँद को पकड़ दे।"

कौशल्या उठी, भीतर कमरे में गई, दो चमकीले दर्पण उठा लाई। एक राम के और दूसरा लक्ष्मण के हाथ में रख दिया। कहने लगी, अब देखो ऊपर का चाँद नीचे दर्पण में उतर आया कि नहीं? मनुष्य उपाय से सब कुछ कर सकता है। कोई काम ऐसा नहीं है जो मनुष्य न कर सकेगा। हां, साहस और पुरुषार्थ, युक्ति और यत्न चाहिए।

राम और लक्ष्मण दोनों ने दर्पण को देखा, सचमुच उनके भीतर चांद चमक दमक रहा था। राम प्रसन्न हुये और माता की युक्ति की प्रशंसा करने लगे।

कौशल्या बोली---"बेटे! तू दुखी और उदास क्यों रहता है? मनुष्य संसार में दुखी होने नहीं आया"।

राम---"फिर मनुष्य किस लिये आया है?"

कौशल्या—"सुखी रहने के लिए।"

राम ने कौशल्या के गालों को नन्हे २ हाथों से थपथपाते हुए हँस कर कहा। "चुप माई चुप! कोई सुन पावेगा तो

कहेगा कि राम की माता बावली है। दुःख के बिना सुख कहां होता है? जो सुख की इच्छा करेगा उसे अवश्य दुःखी होना पड़ेगा। सुख दुख साथ २ रहते हैं। यह जगत द्वन्द स्थान है वशिष्ट जी ने कल यही बात मुझसे कही थी। दिन के साथ रात्रि, अमृत के साथ हलाहल, जीवन के साथ मृत्यु लगे हुये हैं। तूने आकाश मंडल से चांद को बुला लिया। क्या वह आगया? चाँद तो नहीं उतरा, हां उसकी छाया निःसंदेह दर्पण में उतरी। छाया को लेकर मैं क्या करता! तूने मेरे मन बहलाने का उपाय सोचा। तेरी युक्ति को देखकर मैं प्रसन्न तो हो गया। थोड़ी देर के लिए मेरी उदासी जाती रही। अब फिर भी जैसे का तैसा हूं।"

कौशल्या डरी। "यह लड़का है या कोई बड़ा ज्ञानी है!" कहने लगी—"राम! जगत में हर बात की संभावना है। मनुष्य ज्ञान को पाकर सुख को भोगता और दुःख से बचता रहता है।"

राम—"माई! यह ज्ञान क्या है?"

कौशल्या—"समझ बूझ, सोच विचार, देख भाल, जांच परताल! इन्हीं बातों को ज्ञान कहते हैं। इनके अतिरिक्त और ज्ञान क्या होगा?"

राम—दृष्टान्त देकर मुझे समझाओ।

कौशल्या—"ज्ञानी जानता है कि मछली का मांस स्वादिष्ट होता है और उसका कांटा बुरा होता है। ज्ञानी मछली तो खा लेता है और कांटे निकाल कर फेंक देता है। मधु मीठा, मक्खी का डँस बुरा! मनुष्य उपाय से मधु को लेकर पी जाता है और मक्खी के डंस से बच रहता है। यह बात ज्ञान से सम्भव है।"

राम "अच्छा ! एक बात समझादे।"

कौशल्या—"कह, तू क्या कहता है ?"

राम—'समझ बूझ, सोच विचार, ज्ञान, ध्यान, इत्यादि सब साधन हैं। साधन में दुःख होता है कि नहीं होता ?"

कौशल्या—'आरम्भ में दुःख अवश्य होता है।'

राम—'जब आदि में दुःख है तो मध्य में दुःख होगा और अन्त में भी दुख से रहित न होगा। इसलिए मैं तेरे ज्ञान को भी दुःख ही समझता हूँ। वह भी दुख रूप ही है। मैंने इस पर भली भांति विचार कर लिया। वाशिष्ठ जी से मेरा वातालाप हुआ। मैं इस संसार को दुःख रूप ही प्रतीत करता हूँ।'

जितने तन धारी हैं रहते हैं दुखी।
एक को भी मैं नहीं पाता सुखी॥
है दुखी राजा दुखारी है प्रजा।
दुःख का सागर दुख से रहता है भरा॥
जन्मना दुख है तो मरना दुःख है।
डूबना दुख है तो तरना दुःख है॥
साधना दुख, यत्न दुख, व्यौहार दुःख।
क्या कहूँ माता ! ये है संसार दुःख॥
फूल मुरझाता है खिल कर देख तू।
मित्र दुख पाता है मिल कर देख तू॥

कौशल्या डर गई—'चुप राम चुप ! तुझको किसने ये शिक्षा दी।'

राम—'तूने मुझे यह शिक्षा दी।'

कौशल्या—'यह झूँठ है। मैंने कभी आज तक तुझे यह नहीं कहा कि संसार दुःख है।'

राम मुस्कराये—मैंने तेरे पेट में रहकर इस पाठ का

पठन किया है। तेरे संतति नहीं थी। तू दुखी थी। साधन किया, उपाय किया, यज्ञ रचा, इसको बुलाया, उसको बुलाया। यह सब दुःख ही तो था। मैं तेरे पेट में आया। नौ महीने मेरा बोझ पेट के भीतर लिये फिरी। यह दुःख था कि सुख था! मैं उत्पन्न हुआ। तेरी छाती का लहू चूँसकर पिया। भरत जी नाना के घर चले गये। मैं उदास होगया। पिता जी को क्लेश हुआ। गुरुजी मुझे अपने घर लेगये। तू आप समझले, मेरा वियोग तेरे लिए दुःख था कि सुख था?"

घर में दुख है घर के बाहर भी है दुःख,।
मान दुख है और अनादर भी है दुःख॥
दृश्य दुख का रूप है दृष्टी में दुःख।
जगत के व्यौहार और सृष्टि में दुःख॥
दुख में दुख है, दुख में दुःख है हर घड़ी।
देखता हूँ मूरती दुःख की खड़ी॥
आगे पीछे दुःख है और दायें है दुःख।
नीचे ऊपर दुःख है और बायें है दुःख॥
दुख है क्रोध और लोभ और है काम दुःख।
रूप दुख है और यहाँ है नाम दुःख॥

कौशल्या ने राम की बातें सुनीं, सहम गई। उनको गोद में बिठा कर प्यार करने लगी। "चल घूम फिर खेल कूद! यह क्या है दुःख का हर समय बिचार क्या करना! जब दुख और सुख दोनों ही साथ-साथ रहें तो फिर केवल दुख ही का चिन्तन क्यों किया जावे! सुख का चिन्तन क्यों न हो? नर शरीर सुर को भी दुर्लभ है। ऐसा क्यों कहा गया। इसका विचार होना चाहिये।"

राम—"तूने इस समय सार्थक बात कही है। ऐसा ही

करूँगा और कौशल्या ने माता की ममता और प्यार के माया जाल से उस समय राम को फुसला तो लिया, काम काज और खाने पिलाने में लगा लिया लेकिन यह केवल थोड़े समय की बात थी।

पाँचवां समुल्लास

राम और वशिष्ठ का सम्वाद

दो चार दिन के पीछे राम और लक्ष्मण दोनों गुरू के घर गये। वह पूजा पाठ में लगे थे। अरुन्धती ने आसन दिया, बिठाया, जब वशिष्ठ जी पूजा पाठ से निश्चिन्त हुए, बाहर आकर राम से मिले, कुशल पूछी।

राम ने कहा—"कुशलताई कहीं होगी तो वह आपके पवित्र चरणों में होगी। सम्भव है कि वह आपके चरण कमल की छाया ही होगी। नहीं तो—

कुशल कुशल ही पूँछते, जग में रहा न कोय।
संशय मिटा ना भय मरा, कुशल कहाँ से होय॥

पानी का है बुदबुदा, इस मानुस की गात।
देखत ही छिप जायेंगे, ज्यों तारा परभात॥

वशिष्ठ—"इस समय आप कैसे पधारे?"

राम—माता जी ने कहा—"नर शरीर सुर को भी दुर्लभ।" यह बात मेरी समझ में नहीं आई। आपके पास समझने आया हूँ।" वशिष्ठ ने राम को गहरी दृष्टि से देखकर कहा—"राम! नर केवल तुम हो। यह जो मनुष्याकार पुरुष संसार में दिखाई देते हैं, यह मनुष्य नहीं है। तुम नर और नर श्रेष्ठ

हो, तुम्हारे जैसा श्रेष्ठ कोई भी नर प्राणी मुझे संसार में दिखाई नहीं देता। तुम नर हो और नर होने से तुम को मैं नारायण का रूप समझता हूं।"

राम "यह तो आप मुझे सम्मान दे रहे हो।"

वशिष्ठ—"नही राम! नही, मैं जो कह रहा हूं. सच्ची बात कह रहा हूँ। लगाव-लपेट का काम नहीं है। तुम्हारे जैसा शरीर किसी देवी देवता को प्राप्त नहीं है। वह ऐसी देह के लिये तरसते हैं और यह उन्हें नहीं मिलता।"

राम—'संसार मनुष्यों से भरा हुआ है इनको आप क्या कहते हैं?"

वशिष्ठ—"इनमें से कोई भेड़ है, कोई बकरी है, कोई कुत्ता है, कोई भेड़िया, लोमड़ी और गीदड़ है। नाक कान और आँख इत्यादि चाहे मनुष्य जैसे हों, लेकिन यह मनुष्य कभी नहीं हैं। इनकी प्रकृति पर विचार करो। इनका गुण, कर्म और स्वभाव आप बता देंगे कि यह कौन हैं और कैसी योनि में है। जिसमें क्रोध की अधिकता देखो और निरा स्वार्थी पाओ, समझ लो वह कुत्ता, बिल्ली, भेड़िया और सिंह है और फाड़ खाने वाला पशु है। जिसमें लोभ की विशेषता का गुण पाओ उसे मछली, मक्खी आदि के समान लोभी पशु जानो। जो बहुत ठकुर सुहाती बात कहता है और हाँ में हां मिलाता रहता है वह लोमड़ी है। इत्यादि इत्यादि! मनुष्य लाखों में कोई एक ही होता है।"

राम—"यह बात मेरी समझ में आ गई। अब यह बतलाइये कि मनुष्य आप किसे कहते हैं?"

वशिष्ठ—(१) 'जिसमें मनन शक्ति की अधिकता हो वह मनुष्य है। (२) जो किसी के आसरे नहीं रहता बल्कि सब

जिसके आसरे रहते हैं, वह मनुष्य है। (३) जिसमें किसी बात की कमी नहीं है जो अपने ऊपर निर्भर रहता है और सब प्रकार पूर्ण होता है हे राम! वह मनुष्य है और वह इस संसार में सारे देवी देवताओं से बढ़कर कहलाता है। इससे उत्तम जन्म किसी का भी नहीं हैं और देवी देवता सब इसके अधीन रहते हैं।"

राम—' आपने बहुत बड़ी बात कही है। देवी देवता आप किनको कहते हैं?"

वशिष्ठ—"देव शब्द संस्कृत धातु दिव (खेल) से निकला है। जिनका काम केवल खेलने का है वह देवता कहलाते हैं। वह वह इस प्राकृतिक जगत् में प्रकृति मात्र की दिव्य शक्तियाँ हैं, जो चमकती दमकती हैं और प्रकाश स्वरूप होती हैं। यह लाखों और करोड़ों प्रकार की होती हैं। यह जगत् पुरुष प्रकृति के विलास का मंडल है। इनमें जो दिव्य शक्ति पुरुष लिंग हैं वह देवता कहलाते हैं और जो स्त्रीलिंग हैं यह उनकी देवियां हैं।"

राम—"इनके नाम और रूप?

वशिष्ठ—"इसमें सन्देह नहीं है कि यह जगत् नाम और रूप वाला है। जिसका नाम है, उसका रूप भी है लेकिन इनकी कोटियां इतनी अधिक हैं कि इनका सूचीपत्र नहीं बन सकता। दृष्टान्त की दृष्टि से कुछ सुनो :—

नक्षत्र देवता अर्थात् दिव्य शक्ति वाले हैं। रवि, चंद्र, मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, और शनि देवता हैं।

उनका नाम और रूप दोनों हैं।

तत्व अर्थात् भूत दिव्य शक्ति वाले देवता हैं और वह आकाश, वायु, अग्नि जल, और पृथ्वी हैं।

उनके भी नाम और रूप दोनों हैं।

मनुष्य शरीर में तीन प्रकार और तेतीस कोटि के देवता हैं--

आठ वसु, बारह आदित्य, शेष ग्यारह इन्द्रियाँ जो रुद्र कहलाती हैं (पांच कर्मेन्द्रियां पांच ज्ञानेन्द्रियां और ग्यारहवां मन)।

आत्मा और प्रधान यह सब देवता हैं।

इनके भी नाम और रूप दोनों हैं।

इत्यादि, इत्यादि, इत्यादि।

राम "बस ! इतना बहुत है। मैं समझ गया, विशेष कहने की आवश्यकता नहीं रही। अब यह कहिये कि इनसे मनुष्य में क्या विशेषता है जिस के कारण यह सब में श्रेष्ठ है।"

वशिष्ठ—"(१) मनुष्य पूर्ण है (२) ब्रह्म के समान इसमें सारी सृष्टि बसती है (३) यह सब के सब अवच्छिन्न (पृथक पृथक) हैं और मनुष्य ऐसा नहीं है (४) इनकी गति नियम बद्ध है। मनुष्य की गति नियम बद्ध नही है। वह ऊँचे से नीचे तक जैसा चाहे जा सकता है और इन सबको अपने बशीभूत कर सकता है (५) यह सबके सब एक बद्ध हैं। इनमें से किसी की मुक्ति नहीं और न इनके यहां बंधन और मुक्ति का प्रश्न उठाया जा सकता है। मनुष्य चाहे तो बद्ध हो रहे और चाहे मुक्त हो रहे। यह मनुष्य और देवताओं में भेद है।"

राम—"मनुष्य की इस दृष्टि से बड़ी महिमा है। आपने कहा कि ब्रह्म के समान इस मनुष्य में सृष्टि बसती है। इस कथन में क्या रहस्य है ?"

वशिष्ठ—"जैसे ब्रह्म सारे जगत् तत्वों, देवता, जीव जन्तु सबका निवास स्थान है, सब उसमें रहते, जीते, मरते, खिपते हैं। वैसे ही इस मनुष्य के शरीर के भीतर यह सब के सब भरे पड़े हैं।

उसकी शिखा से लेकर नस नाड़ी के सूत्रों तक में सृष्टि का प्रबन्ध है। उसके रक्त, मास, धातु, कफ, पित्त और वायु इत्यादि में सब जगह भांति भांति की बस्ती बसती है। जो इस मनुष्य के पिंडांड में है वही ब्रह्म के ब्रह्मांड में है।" "पिंडे सो ब्रह्मांडे।"

राम—"आप कहते तो ठीक हैं। मैं बालक छोटी बुद्धि का हूं, इसलिये बार बार प्रश्न करता हूँ। क्षमा कीजियेगा। अब यह बताइए कि मनुष्य के पिंड में ब्रह्मांड के समान तत्वों के कौन २ से स्थान हैं?"

वशिष्ठ—"तत्वों के स्थान इसके स्थूल देह के अन्तर्गत हैं।" आप चित्र नं० १ को देखिए।

इस प्रकार पिंड में तत्वों के रहने का प्रबन्ध है। ऐसा ही प्रबन्ध और इसी रूप और आकार में तत्वों के रहने का प्रबन्ध ब्रह्मांड में भी है। जैसे मनुष्य का पिंड वैसे ही ब्रह्म का ब्रह्मांड है।

इसके आगे मस्तिक में सूक्ष्म तत्व और सिर में कारण तत्वों का निवास स्थान है। जो वहाँ है, वही यहां है, जो यहां है वही वहां है। दोनों में किंचित मात्र भेद नहीं है। भेद है भी तो केवल तोल और माप का है। समझने बूझने और समझाने बुझाने के भाव से जीव और ब्रह्म का भेद माना जाता है। बात चीत जब होगी, दो के प्रसङ्ग में होगी। जहां एक ही एक हैं, वहाँ कौन किसको कहे, किससे कहे, किसको सुने, किसको सूँघे, किसको चाखे, और किससे चाखे! ब्रह्म का आदर्श सामने रख कर जीव उस तक पहुँचने का साधन करता है। उसे सर्वज्ञ मान कर अपने को अल्पज्ञ मानता है। नहीं तो बुंद सिन्धु से पृथक कब है!"

राम—"पिंड ब्रह्मांड के स्थूल तत्वों या महाभूतों का विषय तो मैंने समझ लिया। संशय और सन्देह जाते रहे। अनुमान ने

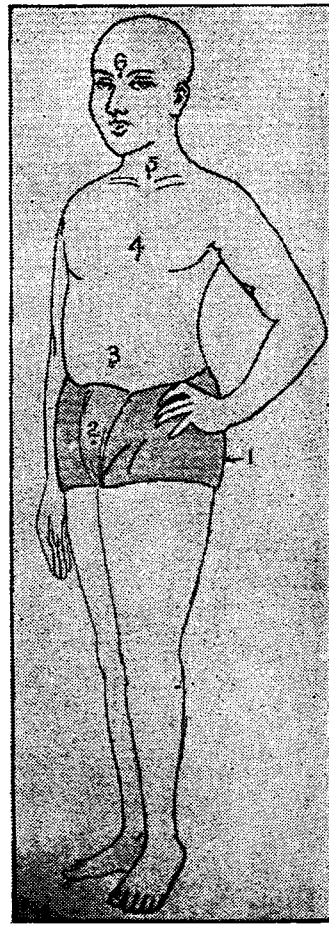

(१) गुदाचक्र (मल की जगह) में मिट्टी (पृथ्वी तत्व) रहता है।
(२) इन्द्रियचक्र (मूत्र की जगह) में पानी (जल तत्व)रहता है।
(३) नाभिचक्र(टूड़ी की जगह) में पेट की आग(अग्नि)रहती है।
(४) हृदयचक्र(दोनों छातियों के बीच की जगह)में बायु (वायु-तत्व) रहता है।
(५) कंठचक्र (गले की जगह) में आकाश (आकाश तत्व) रहता है
(६) नेत्रचक्र (दोनों भौओं के बीच की जगह) में मन (मन का तत्व) रहता है।

दृढ होकर निश्चय करा दिया। अब यह बतलाइये कि देवता क्या हैं ? और इस पिंड और ब्रह्माड में कहां कहां रहते हैं ?"

वशिष्ठ –"सुनो राम ! देवता दिव्य शक्तियों को कहते हैं जो पिंड और ब्रह्मांड में खेलते रहते हैं।"

"ऐ राम ! सृष्टि क्रम में तीन चार बातें होती हैं—तत्व, तत्वों का मण्डल, अधिष्ठाता, नाम, रूप और लीला इत्यादि। मैं तुम से संक्षेप मात्र वर्णन करता हूँ। विस्तार में फैलाव होता है, प्रसंग बढ़ जाता है और समझाने बुझाने में समय अधिक लगता है।

पृथ्वी तत्व के अधिष्ठाता या देवता का नाम गणेश है, जो गणों का अर्थात् इन्द्रियों का पति है। इन्द्रियाँ इसी के सहारे रहती हैं। इसका मण्डल, केन्द्र या स्थान गुदा चक्र है जो मूलाधार कहलाता है। यह मिट्टी को निकाला करता है। काम की मिट्टी को रख लेता है बेकाम को फेंक देता है। यह इसकी लीला है।

जल तत्व के अधिष्ठाता या देवता का नाम ब्रह्मा है। जो रचना के स्थूल शरीरों को गढ़ता और बनाता है। इसका काम कुम्हार के समान है। काम के जल से यह शरीर बनाता और बेकाम जल को निकालता रहता है। इसके रहने का स्थान इन्द्रिय चक्र (मूत्र केन्द्र) है।

अग्नि तत्व के अधिष्ठाता या देवता का नाम विष्णु है, जो सारे पिंड और ब्रह्मांड के जीवों का पालन पोषण करता है। इसके रहने का मण्डल नाभि है। खाना नाभि में जाता है। उससे लहू धातु चर्बी आदि बनती है और यह आहार के रूप में एड़ी से लेकर चोटी तक सबको देता और पहुंचाता रहता है। यह उत्तम अग्नि को ले लेता है। जो निरर्थक होती है उसे बाहर फेंक देता है।

वायु तत्व के अधिष्ठाता या देवता का नाम कल्याण रूप शिव

है। यह हृदय के स्थान में रहता है। इसका काम सहार और समता, समानता है। हृदय में फेफड़े रहते हैं। प्राण का पंखा चलता रहता है अशुद्ध वायु को निकालता और शुद्ध को ले लेता है। यह काम साँस के रूप में हुआ करता है।

आकाश तत्व के अधिष्ठता या देवता का नाम दुर्गा आदि शक्ति आद्या है जो कंठ में रहती है। इसका काम नीचे के तत्वों को अवकाश और सहारा देना है। शुद्ध आकाश को लेना और अशुद्ध को निकालना इस दुर्गा देवी का कर्त्तव्य है। इत्यादि, इत्यादि इत्यादि।

"यह स्थूल तत्वों के स्थूल देवता इन पांच चक्रों में रहते हैं। जैसे पिंड में वैसे ही ब्रह्माँड में हैं। आगे ऊपर के मण्डलों में इनके सूक्ष्म और कारण रूप हैं। कहो तो उनका भी वर्णन कर चलूँ।"

राम-"समझने बूझने के लिये यह आवश्यकता से अधिक है। मैंने इसे समझ लिया"।

छठा समुल्लास

राम और वशिष्ठ का संवाद (लगातार)

राम ने कहा—"आपने अपनी शिक्षा से मुझे कृतार्थ कर दिया। मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। यह तो मैं समझ गया कि देवता दिव्य शक्तियां हैं, जो पिंड और ब्रह्मांड दोनों में रहती हैं। यह परिच्छिन्न और अविछिन्न हैं। मनुष्य में विशेषता है। यह मण्डलीक और बद्ध हैं, मनुष्य बद्ध और मुक्त दोनों है। वह इन दिव्य शक्तियों से काम लेता है, ले सकता है। यह उसके हथियार हैं लेकिन यह तो बताइये कि यह इस

रचना में कैसे प्रकट होती हैं और क्या यह निर्द्वन्द्व हैं और केवल मनुष्य और ब्रह्म की अधीनता में हैं ?"

वशिष्ठ ने उत्तर दिया—"ऐ राम ! द्वन्द स्थल में रह कर कोई भी निर्द्वन्द्व नहीं है। पुरुष और प्रकृति के विलास मण्डल में द्वन्द्वपना सब में है। निर्द्वन्द्वपना कहीं भी नहीं है। देश, काल और वस्तु में कोई भी कभी निर्द्वन्द नहीं है। इन देवताओं [खेलने वाली दिव्य शक्तियां] के भी विरोधी हैं।'

राम—"इनके विरोधी कौन हैं और उनका नाम क्या है ?"

वशिष्ठ—"इनके विरोधी असुर कहलाते हैं और यही उनका नाम भी है। देवता सुर हैं और यह देव विरोधी होने से असुर हैं और वह बराबर रात दिन हाथापाई और लड़ाई भिड़ाई में लगे रहते हैं और इस रचना का प्रबन्ध इनकी परस्पर लड़ाई से होता है। और यही कारण है कि इस जगत् को देवासुर संग्राम कहते हैं। अपनी दशा को देखो-शांति में अशांति, सुख में दुःख, चित्त की निश्चलता में चंचलता है। यही देवासुर संग्राम है।"

राम—"सुर और असुर में भेद क्या है ?"

वशिष्ठ—"सुर संस्कृत धातु 'षुर' से निकलता है।" इसका अर्थ है प्रकाश में आना, प्रकाशित होना। [षु] समर्थता—बल पौरुष को प्राप्त करना और असुर इनके विपरीत हैं। वह अन्धकार में रहना चाहते हैं, देवताओं को बलवान नहीं होने देते और पग पग पर बाधा और रुकावट बनते हैं संस्कृत 'अ',[नहीं] और 'सुर' -[देवता] जो देवता नहीं है वह असुर हैं।"

राम—"यह मैंने समझ लिया। इनमें बड़ा कौन है और छोटा कौन है ?"

वशिष्ठ - "असुर बड़े और सुर छोटे हैं। दोनों भाई २ हैं। पहले असुर उत्पन्न हुये, इसलिए वह बड़े भाई हैं। फिर पीछे सुर उत्पन्न हुए, इसलिए वह छोटे भाई हैं।"

राम—"यह तो आप विचित्र बात कहते हैं जिसे सुनकर आश्चर्य होता है।"

वशिष्ठ—'इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। सृष्टि क्रम का प्रबन्ध ही ऐसा है।"

राम—"इसे स्पष्ट कर दीजिए तब मैं समझूँ।"

वशिष्ठ—"सुनो राम! प्रसंग दो प्रकार पर चलता है—कथा अंलकार में या यथार्थ रीति से। आपको किस से रुचि है? मैं अपने वर्णन में उसी का प्रबन्ध करुँ।"

राम—'साधारण प्राणी को सूक्ष्म विषय की समझ नहीं होती। प्रतिमा उन्हीं के समझाने के लिए बनाई जाती है। अलंकार भी मध्य श्रेणी के मनुष्यों के लिए है। मुझे समझ बूझ है, आप सरल वाणी में कहिए. मैं समझ लूँगा।"

वशिष्ठ—सृष्टि से पहले सत को असत ने घेर रक्खा था। सत दबा हुआ नीचे था और असत का कोष उस पर चढ़ा हुआ था और सत भी असत रुप ही बना हुआ था।

सत् कहते हैं प्रकट या प्रकाश में आये हुए जीवन को। और असत् कहते हैं अप्रकट अप्रकाश में रहती हुई दशा को। इसमें क्षोभ हुआ। उस पर जो असत का झोल पड़ा हुआ था वह हटा। यह पहली अवस्था थी। इसके पीछे प्रकाश आया। वह दूसरी अवस्था थी।

असत या अंधकार से जो प्राणी उत्पन्न हुए, वह असुर कहलाए और पहले उत्पन्न होने से वह बड़े कहलाते हैं। उनके पीछे जो प्रकाश वाले दिव्य प्राणी निकले वह सुर कहलाए और

पीछे उत्पन्न होने के कारण वह छोटे कहलाये।

प्राणी दोनों ही हैं। प्राण के बिना कोई जीव जन्तु या सृष्टि का कोई भी पदार्थ रह नहीं सकता इसलिए वह प्राणी कहलाते हैं। यहां जितने अणु या परमाणु हैं सब के सब सांस लेते हैं। सांस प्राण है, इसलिए यह सब के सब प्राणी हैं।

उनके छोटे भाई और बड़े भाई कहलाने का यह कारण है।"

राम—"सुर पहिले क्यों नहीं प्रकट हुये?"

वशिष्ट—"सृष्टि क्रम का नियम ही ऐसा है। उस पर क्यों और किस लिये का प्रश्न नहीं उठाया जाता।

तुम देखो जब दिया जलाते हो, तो पहले धुँआ उठकर मकान की छत में जाकर मंडलाकार होता है। धुँआ के पीछे ज्योति प्रकट होती है और सबसे अधिक मंड़लाकार धुँआ ही की ओर दौड़ती है और अंधकार और ज्योति या सत और असत् के मेल से यह रचना होने लग जाती है। सत तो सत और सतोगुण का बीज है और असत तम और तमोगुण का बीज है। जब इन दोनों का परस्पर मेल होता है तब सृष्टि का प्रबन्ध होने लगता है। सत और तम के मिलाप से जो तीसरी अवस्था या तीसरा गुण प्रकट होता है उसे रज और रजोगुण कहते हैं। यह सृष्टि रजोगुणी ही है। सत की अधिकता से प्राणी सतोगुणी और तम की अधिकता से वह तमोगुणी कहलाए। विशेषतः यह जगत रजोगुणी ही है।

रजोगुण द्वन्द्व है क्योंकि यह रजोगुण सत और तम का मेल है। जिसमें दोपना हो वह द्वन्द है।

असत सत को घेरे रहता है, इसलिए असत् (तम) की अधिकता वाले प्राणी सत या सतोगुण वाले प्राणियों की रुकावट बने रहते हैं। यह स्वाभाविक बात है। सुर और

असुर का यह रहस्य है।"

राम--- 'यह देवासुर संग्राम सारे जीव जन्तुओं के लिये है या केवल मनुष्य मात्र के लिये है?"

वशिष्ठ--"देश, काल, वस्तु सब में देवासुर संग्राम है। यह प्रपंच कहलाता है।"

राम—"देश और वस्तु में तो यह सम्भावना हो सक्ती है, काल में या अवस्था के प्रसग में यह कैसे सम्भव है?"

वशिष्ठ—"काल में भूत, भविष्य और वतमान है। मनुष्य व अवस्था में जाग्रत, स्वप्न, और सुषुप्ति है और सृष्टि के प्रबन्ध में यह उत्पत्ति, स्थिति और लय है। जब एक अवस्था है तो दूसरी नहीं हैं। वह क्यों नहीं है? क्योंकि वह ढकी हुई रुकी हुई या घिरी हुई है और घेरने वाला तत्व असत् या तम है। ऐ राम! जैसे यह सृष्टि हुई या इसकी प्रवाह रूप धार चलती रहती है, वैसे ही हमारे और तुम्हारे जीवन में यह दृश्य रात दिन दिखाई देता है। तुम जागते हो, सोते हो, और सुषुप्ति (गहरी नींद) में जाते हो। जागना सृष्टि और प्रकाश में आना है, सोना और स्वप्न देखना स्थिति है और सुषुप्ति की गहरी नींद में ढक जाना लय की अवस्था है। इस प्रकार प्रपंच का खेल ब्रह्माँड और पिण्ड दौनों में हुआ करता है। जाग्रत में इन्द्रियों (देवताओं) का खेल होता है। रुकावटें असुरों की ओर से होती रहती हैं और सुषुप्ति में (तम) प्रधान होकर सब को अपने भीतर समेट कर ढक लेता है। जगत की सृष्टि स्थिति और लय की लीला तुम्हारे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में देखी जा सकती है और देवासुर संग्राम मचा रहता है।"

राम—आज मैंने आपके संग का बहुत लाभ उठाया। देव और असुर का रहस्य बहुत कुछ समझ लिया। कल आकर फि

प्रश्न करुँगा। यह कह कर राम दंड प्रणाम करके कैशल्या के पास आए। इनकी उदासी में भी कमी आगई।

सातवां समुल्लास

राम, वशिष्ठ का संवाद

नर शरीर सुर को भी दुर्लभ

दूसरे दिवस राम वशिष्ठ के घर पहुँचे, मिले, बैठे और बात चीत करने लगे।

राम बोले—"भगवन्! नर शरीर सुर को भी दुर्लभ! यह तो मैंने कुछ २ क्या बहुत कुछ समझ लिया। यह जितने सप्त ऋषि हैं, केवल मन्त्र दृष्टा और अपने-अपने मण्डल में बद्ध हैं और अपने मण्डल से आगे नहीं बढ़ सकते। मनुष्य के लिये यह बन्धन नहीं है। सप्त ऋषियों में मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, पुलह और वशिष्ठ सातों इसी प्रकार के हैं। यही दशा मुनियों और तपस्वियों की है जो चुपचाप रह कर जन लोक और तप लोक में सृष्टि क्रम की देख भाल करते और टस से मस नहीं होते। ध्रुव भी अपनी जगह पर स्थित है। मनुष्य की गति इन सब से न्यारी है और यह सबसे श्रेष्ठ है।"

वशिष्ठ राम की बुद्धि को देखकर दंग रह गए। राम को क्या पढ़ाते लिखाते! थोडे ही दिनों में इनकी बुद्धि को पंख लग गए और वह उड़ने लगे।

वशिष्ठ ने हँसकर पूछा, "राम! वशिष्ठ ऋषि मैं ही हूं। क्या आप मुझे भी बद्ध समझते हैं?"

राम मुस्कराये—"आप मनुष्यों में स्वर्गीय वशिष्ठ ऋषि के समान मन्त्र दृष्टा पुरोहित मंत्री हैं। आपको वैसे ही उपमा दी

गई है. जैसे हम किसी मनुष्य को उसकी पवित्राई देख कर देवता कहते हैं।"

वशिष्ठ जी और भी चकित हुये, "राम ! तुम धन्य हो; तुम ब्रह्म के अवतार हो।"

राम—'भगवन्! मनुष्य में जो सबसे बढ़कर विशेषता है वह मुझे समझाइए।"

वशिष्ठ—"मुझे जो कहना था सो कह दिया। मनुष्य पूर्ण है और पूर्ण भी वह ब्रह्म के समान है। सम्भव है कि उसकी शक्तियाँ छिपी और दबी हों। उभरने पर वह वैसा ही दृश्य दिखावेंगी और दिखादेंगी।"

राम—"यह सब मैंने मान लिया। क्या इसे आप और भी स्पष्ट कर देंगे? इसके जानने की मुझे बड़ी इच्छा है।"

वशिष्ठ—"यों समझो कि ब्रह्म सूर्य्य के समान है जो सबका प्रकाशक है। मनुष्य उसी के सदृश्य दूसरा सूर्य्य है जो इस ब्रह्म के तेज का जगत में प्रकाश करता है।"

राम—"यह कथन स्पष्ट नहीं है।"

वशिष्ठ—"यह सच है। इसका समझना कठिन भी है। चिन्ता नहीं। समझाने का प्रयत्न करूँगा।"

चित्र नं० २ को देखो:—

'ब्रह्म जगत का प्रकाशक है और ब्रह्म के जगत का प्रकाशक मनुष्य है। ब्रह्म सृष्टि में एकपना द्वन्द्व के साथ अवश्य है, लेकिन वह फिर भी एक ही है, दूसरा उसकी छाया मात्र होती है। मनुष्य उसी एक को सौ प्रकार, हजार प्रकार और लाख प्रकार पर प्रकट कर देता है और उसी एक पदार्थ को अनगिनत नाम और रूप देता है।"

दृष्टान्त १—ईश्वर के जगत में स्त्री एक वस्तु और स्त्री मात्र है। मनुष्य जगत् में वही स्त्री, नानी, मौसी, माता, बहिन,

चित्र नं० २

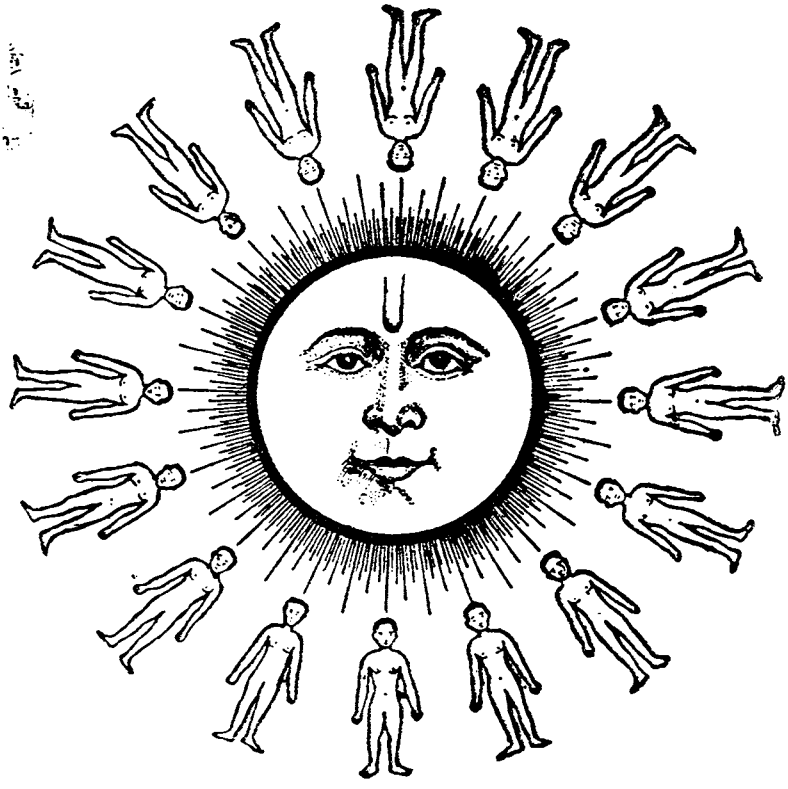

की, भाभी, भान्जी, बहू बेटी, मामी ताई चाची, फुआ,
यादि नाना प्रकार के नाम और रूप से प्रकट होती है।
ह मनुष्य की विचित्रता है।

दृष्टान्त २—दूध ईश्वर के जगत में एक है। मनुष्य उसे
ाल २ कर दही, पनीर, छाछ, खोया, मलाई, बरफी, पेड़ा,
क्खन, घी, इत्यादि बना कर कितने ही नाम रूप दे सकता है।

दृष्टान्त ३—मिट्टी एक तत्व मात्र हैं। मनुष्य ईंट, पत्थर,
ड़ा, कंकड़, हीरा, पन्ना, नीलम, मणि, मानिक, सोना,
दी, इत्यादि के संग्रह, विभाग, गुणा और भाग करते हुए इन
अदलता बदलता हुआ अनगिनत नाम और रूप दे देता है।

दृष्टान्त ४—पानी एक तत्व है। मनुष्य जितनी शक्तियाँ,
प, बिजली, इत्यादि की इसमें से निकाल निकाल कर उन्हें
ाता और नये २ रूप और नाम देता है।

इसी प्रकार वायु, अग्नि, आकाश सब में यह परिवर्त्तन
ता और कर सक्ता है और करता रहता है। उलट फेर से
मनुष्य जगत का विचित्र कर्त्ता और धर्त्ता है।

ऐ राम! प्रकृति में इस मनुष्य की सबसे अधिक महिमा
र प्रतिष्ठा है और देवी देवता सब इसकी आधीनता में
जाते हैं।

देख नर को नर के नाम और रूप का कुछ ध्यान कर।
यह स्वयंभू मुनि है इसके भाव का अनुमान कर॥
ज्ञान इसमें ध्यान इसमें इस ही में अनुमान है।
इसमें है विज्ञान सबकी जान और पहिचान है॥
किस भरम में पड़ गया ईश्वर को कब चाहेगा तू।
अन्धा बन कर रूप उसका कैसे पहिचानेगा तू॥

अपने आपे को समझ आपे में सारा भेद है।
भेद जब अपना नहीं जाना तो भ्रम और खेद है॥
नर में नारायण है नारायण में नर है जान ले।
भेद इनमें कुछ नहीं जा गुरु से गुरु का ज्ञान ले॥"

राम प्रसन्न हुए—"आप सचमुच गुरु और उस वशिष्ठ ऋषि के अवतार हैं जो आकाशमें मंडलीक हो रहा है।"

वशिष्ठ हँसे - "ऐ राम! तुम सम्पूर्ण ब्रह्म के अवतार हो।"

राम—"मैं इसे नहीं जानता और न जानना चाहता हूं। जानने की विद्या मुझे आप से प्राप्त हो रही है। इसका ज्ञान हो चला है।"

वशिष्ठ—"इस मनुष्य की श्रेष्ठता के विषय में और भी कुछ पूछना है या तुम्हें संतोष हो गया?"

राम—"क्या यह सम्भव है कि यह मनुष्य ब्रह्म के जगत् को अपने अधीन कर सके?"

वशिष्ठ—"सृष्टि में तुम्हारा अवतार इसी मन्तव्य से हुआ है। तुम सब कुछ कर सकते हो और कर सकोगे। चन्द्रमा सूर्य्य, तारे और देवताओं को आज्ञा दो कि शान्त हो जाओ और वह शान्त हो जायेंगे।"

शन्नो मित्रः शम्वरुणः शन्नो भवत्व अर्य्यमा।
शन्नो इन्द्रः बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः॥

राम—'आपकी दृष्टि में यह मनुष्य ब्रह्म के समान पूर्ण है। इसमें कोई त्रुटि और कोई कमी नहीं है।"

वशिष्ठ—"मैं ऐसा ही समझता हूं। और यह आकाश वाणी इसी मनुष्य की महिमा के विषय में उत्तरी है:—

पूर्णमदः, पूर्णमिदं पूर्णत् पूर्णमुदच्यते।
पूरणस्य, पूर्णमादाया पूर्णमेवा वशिष्यते॥

आठवां समुल्लास

राम वशिष्ठ संवाद

मनुष्य की गति उलटी है

राम ने पूछा—"मनुष्य में औरों के अतिरिक्त और क्या विशेषता है जो मनुष्य में है औरों में नहीं है ?"

वशिष्ठ—"ऐ राम ! और सब जीव जन्तु सीधे साधे और साधारण हैं। मनुष्य की गति उलटी है, यह उलटा है और सबसे विशेष महिमा इसकी यह है कि यह उलटी चाल चलता और चल सकता है।"

राम ने गुरू की बातों पर विचार किया। कोई बात समझ में नहीं आई। मन में सोचते रहे। जब उसके आशय को नहीं ग्रहण कर सके, तो कहना पड़ा कि मैंने इसे नहीं समझा।

वशिष्ठ—"यह समझाने से समझ में आती है। बिना समझाये हुए इसका समझ में आना कठिन भी है, तुम उत्तम अधिकारी हो इसलिए यह रहस्य मैं तुमको सहज में साधारण रीति से समझा दूँगा।

चित्र नं० ३ व ४ को देखो:—

इन चित्रों में दो गाछ हैं। एक साधारण वृक्ष दूसरी मनुष्य की ठठरी जो वृक्ष के आकार की है। इन दोनों की बनावट में कोई भेद नहीं है।

मनुष्य में रक्त है। वृक्ष में रस (जल) है। मनुष्य में हड्डी है, वृक्ष में हीर है, मनुष्य में माँस है, वृक्ष में इसका गूदा है। मनुष्य में चमड़ा है, वृक्ष में उसकी छाल है। जैसे नस नाड़ियों का ताना बाना मनुष्य में है, वैसे ही और उसी रूप का जाल तुम को वृक्ष की जड़ से लेकर उसकी चोटी तक मिलेगा। चाहे

जैसे जांच परताल करो। दोनों में समानता प्रतीत होगी।

भेद केवल यह है कि वृक्ष हिलता डोलता नहीं है, स्थाई है और मनुष्य हिलता डोलता चलता फिरता है स्थाई नहीं है। वृक्ष की जड़ पृथ्वी में गढ़ी रहती है और मनुष्य की जड़ उसका सिर है जो आकाश में फर्राता रहता है। उसकी जड़ पृथ्वी में है इसकी जड़ आकाश में है।

मनुष्य मुंह से खाता और पानी पीता है और उसका खाया पिया हुआ दाना पानी नस नाडियों से होता हुआ ऊपर से नीचे तक पहुंचाता है। वृक्ष की जड़ में खाद पानी छोड़ दो वह अपनी जड़ से खायेगा पीयेगा और यह अहार उसकी जड़ से लेकर पत्ते २ से होता हुआ अंतिम कोंपल तक पहुँच जायेगा। इस दृष्टि से दोनों का जीवन समान है। मनुष्य जागता, सोता और सुषुप्ती में जाता है। वृक्ष भी जागता, सोता और सुषुप्ती में जाता है और गहरी नींद का आनन्द लेता है। मनुष्य के शरीर को चोट आये, ठेस लगे, कट जाये, तो लहू बहता है। वृक्ष को काटो, तोड़ो, पत्ते नोचो, पानी बहने लगेगा, चैप निकलेगी।

मनुष्य को दुःख सुख होता है, वृक्ष को भी दुख सुख होता है। मनुष्य ब्रह्ममय है। इसमें ब्रह (बढ़ना) और मनन (सोचना) है। वृक्ष भी ब्रह्ममय है इसमें ब्रह (बढ़ने) और मनन (सोचने) की शक्ति है।

मनुष्य दुःख से बचने की इच्छा रखता है और यह इच्छा वृक्ष में भी है। लजवन्ती के पौधे को देख कर अनुमान कर लो। दु.ख से बचनेऔर सुखी रहने की संम्भावना दोनों में है मनुष्य अस्थाई होने के कारण चल फिर कर उपाय करता है। वृक्ष स्थाई होने के कारण केवल स्वाभाविक रीति से उपाय

चित्र नं० ३

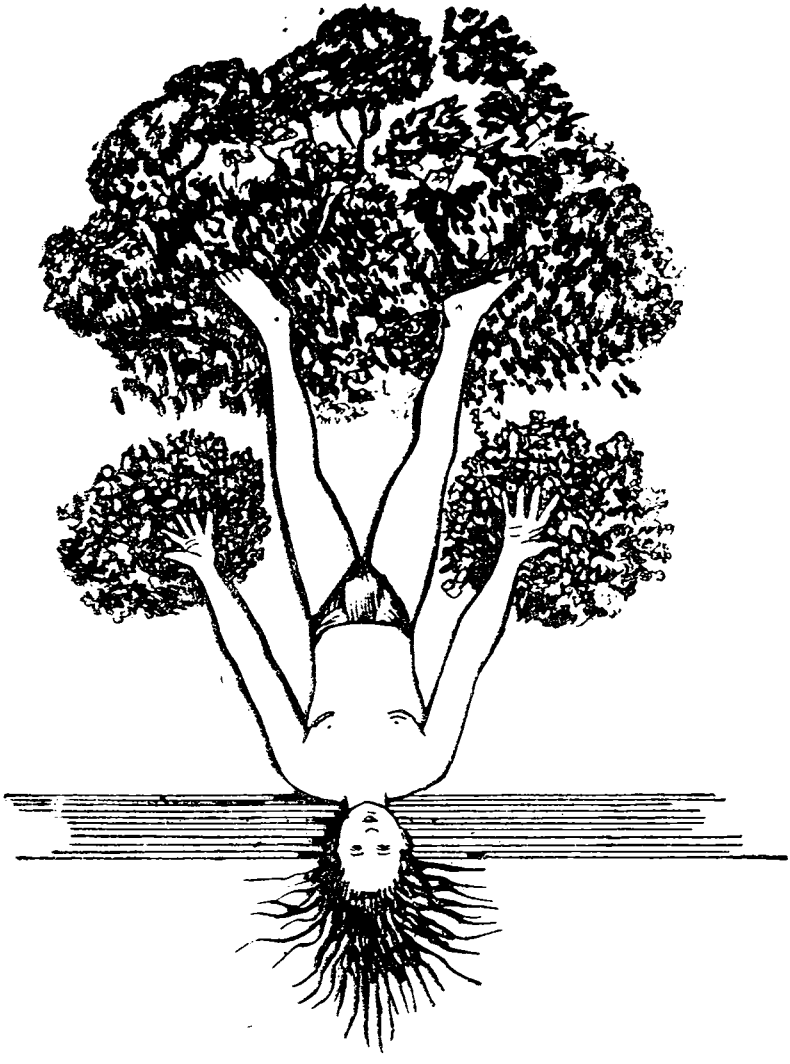

करता है। रोग, सोग और भोग भी दोनों ही को होता है।

मनुष्य उठ, बैठ और लेट सकता है। वृक्ष स्थावर (खड़ा रहने वाला) है, वह खड़ा ही रहता है। यह दोनों में भेद है।

"वृक्ष में फल फूल आते हैं, फूल झड़ जाते हैं, फल लगते हैं और संतति की वृद्धि होती है। मनुष्य भी यही काम करता है। इसका फूल वीर्यपात और उसका फल गर्भाधान का बच्चा है।"

वृक्ष और मनुष्य दोनों ही में नर नारी के जोड़े होते हैं। मनुष्य के जोड़े अलग अलग रहते हैं और वृक्षों में नरनारी बहुधा सम्मिलित अवस्था में रहते हैं।

बहुत बातों में दोनों समान हैं। भेद केवल यह है कि वृक्ष सीधा गाछ है और मनुष्य उलटा गाछ है।

मनुष्य सीधा गाछ होता तो उसकी जड़ भी पृथ्वी में गड़ी रहती और उसका चित्र नं० ३ जैसा होता।

तुम इसे समझ गये। आगे इस बात का समझना शेष रहा कि मनुष्य कैसा हो गया, उसके लिये यह चित्र नं० ४ चलने फिरने वाले गाछ को देखो।"

राम ने पूछा—"मनुष्य उलटा गाछ कैसे बन गया?"

वशिष्ठ ने उत्तर दिया—"सृष्टि में शिखा से जो सूत्र (धार) उतरे वह सीधे थे। प्रवाह में आकर वह कभी आड़े, तिरछे, बांके, टेढ़े, गोले, चौड़े, गहरे, छछले, लिंगाकार और अर्धाकार बने और इनके अन्तरगत जो प्राणी उत्पन्न हुए, उन सब के रूप भी वैसे बनते गये। मनुष्य सब से पीछे प्रकट हुआ। सबके संस्कार और अधिकार इसमें हैं। अन्त में यह उलटा बन गया। लौट फेर हुई। यह प्राकृतिक नियम है और उसे ऐसा बनना भी चाहिये था। इसी एक बात में उसकी सबसे बड़ी

महिमा है। अब इस चित्र नं० ५ को देखो। यह मनुष्य रूपी उलटे गाछ का चित्र है।"

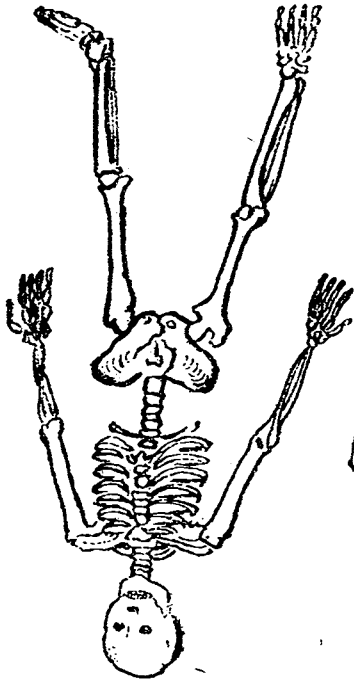

चित्र नं०४

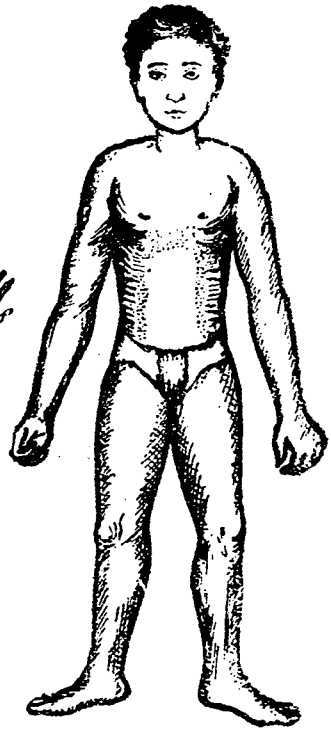

चित्र नं० ५

राम ने पूछा—"इस मनुष्य के उलटे होने और उलटे बनने में उसकी क्या महिमा है?"

वशिष्ठ ने उत्तर दिया—"प्रकृति चाहती है कि वह उलटा बने और उलटा रहे। उलटी चाल चले। इसका व्यौहार उलटा हो वह उलटा नाम जपै।

उलटा साधन करे, उसका जप, तप, योग युक्ति सबकी सब उलटी रहे और वह सूत्रों की प्रपंच रचना को छोड़कर शिखा की ओर अपना मुँह मोड़े।

ऐ राम ! तुम मेरे उत्तम अधिकारी शिष्य हो। मैं तुम से कोई रहस्य नहीं छुपाता और न छुपा सकता हूं।

गूढ़ तत्व न साधु दुरावहिं।
आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥

गायत्री मंत्र देते समय मैंने तुम को जगत रचना की सप्त भूमिका बतादी थी। तुम को स्मरण होगा। वह उलटी है, उसका रूप यों बताया और सुनाया गया था।

भू लोक	ॐ भूः	१
भुवर्लोक	ॐ भुवः	२
स्वरलोक	ॐ स्वः	३
मह लोक	ॐ महः	४
जन लोक	ॐ जनः	५
तप लोक	ॐ तपः	६
सत् लोक	ॐ सत्यम्	७

यह मंत्र में उलटी चाल चलने की विधि थी। यह शिखा की तरफ लौटने का मंत्र (तरकीब, उपाय और साधन) था। शिखा से जो सूत्रों की धार उतरी थी वह सीधी इस प्रकार थी।

सतलोक	ॐ सत्यम्	(१) शिखा
तपलोक	ॐ तपः	(२) सूत्राधार
जन-लोक	ॐ जनः	(३) सूत्राधार सीधी
महःलोक	ॐ महः	(४) सूत्राधार सीधी
स्वर लोक	ॐ स्वः	(५) सूत्राधार सीधी
भुर्वलोक	ॐ भुवः	(६) सूत्राधार सीधी
भू लोक	ॐ भूः	(७) सूत्राधार सीधी

राम ने पूछा—"यह उलटी चाल कैसे चली जाती है ?"

वशिष्ठ ने उत्तर दिया—"यह मैंने तुमको दीक्षा के समय बता दिया था। यह रहस्य है जो गुरू शिष्य प्रणाली में सनातन से चला आता है। यह बात चीत या शास्त्रार्थ का विषय नहीं है, जीवन बनाना है। बात बनाने वाले न इसे समझते हैं, न समझेंगे, न समझाये जायेंगे। यह निगुरों का मत नहीं है, वह कोरे रहेंगे।"

जैसी मुंह से नीकसे, वैसी चाले नाहिं।
निराकार यह स्वान गति, बाँधे यमपुर जाहिं॥
कथनी के सूरे घने, थोथे मारैं तीर।
प्रेम बाण जिनके लगा, तिनके बिकल शरीर॥
करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहै सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी॥

राम—"यह चाल कैसे चलना होती है ?"

वशिष्ठ—"मैंने तुमको संस्कार दे दिया, संस्कृत कर दिया। उसका समय आ रहा है, उसका उत्तेजन भी अन्तर ही अन्तर हो रहा है, धैर्य्य रक्खो।"

"यह चाल घट में चली जाती है। नाक की सीध में रास्ता है और यह रास्ता शिर के बल चलना होता है। यही कारण है कि मनुष्य उलटे गाछ के आकार का बना हुआ है।"

राम गुरू का उपदेश सुन कर लक्ष्मण को साथ लिये हुए अपनी माता के घर गुरू को दंडप्रणाम कर के चले गये।

इति महारामायणम् आरम्भ खंड प्रथमभाग

॥ समाप्तम् ॥

महारामायण

प्रथम आरम्भ खण्ड

द्वितीय भाग

पहिला समुल्लास

(विश्वामित्र आगमन)

अभी राम के प्रश्नोत्तर के साथ समाप्त नहीं हुए थे, कि अयोध्या नगर में विश्वामित्र ऋषि का आगमन हुआ। राजा दशरथ ने सुना प्रसन्न हुए। राज सभा में उन्हें बुला भेजा, सम्मान के साथ आसन दे कर कुशल पूछी।

विश्वामित्र ने उत्तर दिया, "मैं आपकी सभा में किसी विशेष मन्तव्य को लेकर आया हूँ। आप उसकी पूर्ति का वचन दें तो मैं कहूँ।" दशरथ ने तीन बार वचन दिया और उनके मनोरथ सिद्ध कराने का निश्चय दिलाया।

तब विश्वामित्र बोले—"राजन्! बात यह है कि मैं अपने आश्रम में अकेला रह कर तप यज्ञ करता हूं। निशाचर (राक्षस) आकर विघ्न करते हैं। और मेरा यज्ञ विध्वंस हो जाता है। कोई उपाय नहीं चलता। मैंने सोचा राम साथ में रह कर रक्षा करें तब यज्ञ पूर्ण हो। मैं राम के लेने के लिये आपके पास आया हूँ। इनको मेरे साथ कर दीजिये। यह मेरे आने का अभिप्राय है।"

दशरथ को सोच हुआ। "भगवन! राम अभी बालक हैं।

हाथ पाँव के कोमल ! हल निशाचरों का सामना कैसे कर सकेंगे ! मुझे आज्ञा हो तो मैं साथ चल कर आपकी यज्ञ की रखवाली करूँ ।"

❀विश्वामित्र मुस्काये । 'मुझे तो केवल राम से काम है यह बालक हैं । कोमल हृदय के हैं, हाथ, पांव और हृदय के कठोर नहीं हैं । मेरा काम उन्ही से निकलेगा, न मैं और किसी की सहायता चाहता हूँ और न उसे स्वीकार करूँगा ।" दशरथ असमंजस में पड़ गये । न हां कह सकते थे न नहीं कह सकते थे । वह मोह ग्रसित होगये। वशिष्ठ ने उसकी दशा देखी । समझाया । 'राजन् ! विश्वामित्र जी शस्त्र विद्या के गुरू हैं । राम का उनकी सेवा में कुछ दिनों रहना आवश्यक है । यह क्षत्री पुत्र हैं । इनको इस द्वन्द्व जगत् में काम करना है । शिक्षा न होगी तो यह क्या काम कर सकेंगे !"

दशरथ—"क्या आप इनको शिक्षा दीक्षा नहीं दे सकते ?"

वशिष्ठ—"मैंने दीक्षा तो दी । शिक्षा देना विश्वामित्र ही के आधीन है । मैं राम को शिक्षा नहीं दे सकता । आपको मैंने पहले ही कह दिया था कि राम में विलक्षणता है । यह असाधारण मनुष्य हैं । यों तो स्वयं सब कुछ जानते हैं लेकिन कर्त्तव्य और शील, व्यौहारशील होना आवश्यक है । यह अभ्यास चाहता है । इसके लिये साधन करना पड़ता है । साधन ही से अनुभव का उत्तेजन होता है बिना साधन के

❀विश्वामित्र संस्कृत विश्व (संसार) मित्र । (प्रेमी) जिसमें संसार का प्रेम हो वह विश्वामित्र है । राम में वैराग उत्पन्न हुआ वैराग के पीछे अनुराग आता है । यही अनुराग प्रेम और विश्वामित्र है । वैराग का रूप वशिष्ठ है । राम सात्विक ब्रह्मादी मन ब्रह्म के अवतार हैं ।

अनुभव की बृद्धि नहीं होती"

दशरथ—"क्या शिक्षा दीक्षा में भेद है ?"

वशिष्ठ—"दीक्षा मंत्र देने को कहते हैं। यह किसी को उपाय बताना मात्र है और शिक्षा तंत्र विषय है। तंत्र हथियार या कल को कहते हैं यह साधन है। बोलना साधारण रीति से मुँह के द्वारा शब्द निकलना है। उसमें उतना बल नहीं होता। जब वही शब्द किसी तंत्र सींग, भोपना, या खोखले पदार्थ के रास्ते से दूर भेजा जाता है, तो उसमें बल और शक्ति की विशेषता आजाती है। हाथ से बाण फेंका जाय तो वह बहुत दूर न जायगा। लेकिन जब उसे धनुष से जोड़ कर फेंका जाये तो वह बहुत दूर पहुंचेगा और चोट करेगा। ऐ राजन! यही नियम सारे साधनों में चलता है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक हों, व्यौहारिक हों या परमार्थिक हों। मैंने राम के मंत्र के साथ संस्कार तो दिया। लेकिन इस संस्कार की जब पूरी कमाई की जायेगी तब ही उसका अधिकार मिलेगा। इसी को साधन और अभ्यास कहते हैं। यही तंत्र है यह संस्कृत धातु 'तत्रि (फैलाने) से निकला है। और मंत्र संस्कृत धातु मत्रि (मति-शिक्षा सलाह) को कहते हैं। यह इनमें भेद है।"

"महाराज! मेरी गुरुवाई केवल मंत्र दीक्षा तक है। विश्वमित्र तंत्र शिक्षा देकर राम को क्षत्रियों के करतब में प्रवीण कर देंगे। तेली का काम तमोली नहीं करता। यह घोड़े चढ़ने की विद्या, धनुविद्या और नाना प्रकार की विद्यायें इनको बन में रख कर सिखायेंगे। राम को इनके यहां जाने से कभी न रोकिये, नहीं तो उनके जीवन का अकाज होगा।"

दशरथ—"मैं आपकी सम्मति के बिना कोई काम नहीं

करता मैं आपसे सहमत हूं।"

और दशरथ ने राम, लक्ष्मण को कौशल्या के महल से बुला भेजा। कौशल्या मोह बस नहीं हुई। प्रसन्न हो कर उन्हें गुरू के पास जाने, रहने और गुरू की सेवा करने की आज्ञा दी। दोनों राजकुमार आये, राजा और ऋषि को प्रणाम किया।

दशरथ ने पुत्रों को कहा। बेटो! आर्य संतति के दो जन्म होते हैं। एक तो बाप के यहां जन्म, दूसरा गुरू के यहाँ का जन्म। दोनों कुल की मर्य्यादा साथ साथ चलती हैं। और दो स्थानों में जन्म लेने से वह द्विज या दो जन्मे कहलाते हैं। गोत्र केवल गुरू के नाम से चलता है। यह गोत्र चौबीस होते हैं, जैसे साँडिल:, कश्चय, गौतम, भारद्वाज इत्यादि। गोत्र दो संस्कृत धातुओं से बना है:—गो (शब्द) और त्र (बचाने वाला) बचाने वाला शब्द गुरू से मिलता है। जिसने जिस ऋषि की। भाषा से जो शब्द जान लिया है, उसी से या उसकी सहायता से वह बचता है। जो जिनसे शिक्षित हुये हैं उनके समुदाय का नाम गोत्र है। आज तुम पितृ कुल से निकल कर गुरू के कुल में जाते हो। जाओ। लाभदायक शिक्षा सीखो। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।"

राम लक्ष्मण दोनों ने पिता और गुरू के चरणों में शीश झुका कर प्रणाम किया और माताओं से आज्ञा ली और विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम का रास्ता लिया।

दूसरा समुल्लास

ताड़का बध, मारीच और सुबाहु की ताड़ना।

राम लक्ष्मण और विश्वामित्र तीनों अयोध्या से निकल कर बलिया विराध के आश्रम को जा रहे थे। ताड़का राक्षसी ने उन्हें देख लिया। वह विश्वामित्र के हवन में विघ्न किया करती थी। समझ गई कि ऋषि सहायता निमित्त राम लक्ष्मण को यज्ञशाला की रखवाली के लिये साथ लिए जा रहे हैं। उसे इन तीनों का दृश्य अच्छा नहीं लगा। मुख खोल कर दौड़ी कि कम से कम इनमें से किसी को निगल ले। दौनों भाइयों ने इस ताड़का के भयानक रूप को देखकर जान लिया कि यह उत्पात मचाने को आ रही है। धनुष में एक एक बाण को जोड़ा। यह सनसनाता हुआ इस राक्षसी के मुँह में समा गया और शरीर के वार पार निकल आया। वह उसी समय मर गई।

ताड़का -- संस्कृत धातु तड् (मार-धारताड़) जो मार धार के योग्य हो वह ताड़का। यह मन की वह मह स्थूल चंचल वृति है जो चित्त की एकाग्रता नहीं होने देती। इस के मार देने में ही भलाई है।

मारीच—संस्कृत धातु मृरी (मरने) से बना है, वह रावण का बलवान दूत था। जो भेश बदल कर छला करता था योग साधन में यह धोखा देने वाली रजोगुणी वृति है जो निद्रा आलस्य प्रमाद के रूप में धोका देकर साधन को बिगाड़ देती है।

सुबाहु—संस्कृत सु (अच्छा) बाहू (बाजू-बल-भुजा) धातु बाध धातु से बना है जिसका अर्थ (रोकना) मन की वह वृति ज साधन को रोक देती है।

ऋषि इस दशा को देखकर प्रसन्न हुए। मन में राम की प्रतिष्ठा उत्पन्न हुई और विश्वास हो गया कि इनके होते हुए निश्चर अब यज्ञ के प्रबन्ध में हानिकारक न होंगे। तीनों ने आश्रम में प्रवेश किया। स्थान सुहाना था! गंगा का तट! खुली हुई जगह! आश्रम फूँस का झोंपड़ा था। उसके चारों तरफ फूलों और फलों के बेल बूँटे लगे हुए उसकी शोभा को बढ़ा रहे थे। यह फल और फूलों से लदे हुए भी थे। वायु के झोंके फलों की सुगन्ध को हर जगह फैलाते थे। और उधर से आने जाने वालों की आंख और हृदय को आनन्द मिलता था। गायें और भैंसें स्वतन्त्रता पूर्वक घास चरती थीं और आश्रम के फल फूलों के वृक्षों को नहीं छेड़ती थीं।

राम को आश्रम के अन्न जल से हर्ष प्राप्त हुआ। यों तो अयोध्या की राजधानी पचासों मीलों में फैली हुई नानाप्रकार की वाटिकाओं से सुशोभित थी, लेकिन वह कुछ और थी और यह जगह कुछ और थी। वहाँ बनावट थी यहाँ बनावट नहीं थी।

विश्वामित्र सुसमय पाकर अपने यज्ञ साधन में लगे। उस वन में दो राक्षस मारीच और सुबाहु रहते थे। उन्होंने सुना कि राम ने ताड़िका को मार दिया है, यों ही क्रोध अग्नि में जले भुने थे। जब सुना कि विश्वामित्र यज्ञ करने पर तत्पर हैं वह अपनी सेना लेकर चढ़ाई करने आये कि ऋषि यज्ञ न कर सकें। विघ्न करना इनका कर्त्तव्य है।

ऋषि तो यज्ञ करने बैठे राम और लक्ष्मण धनुष बाण लिए हुए रखवाली करने लगे। निशाचरों का दल आया और रुकावट पर तत्पर हुआ। दोनों वीरों ने धनुष और बाण को उठाया। मार धाड़ मची और यह सबके सब जैसे आँधी के

समान आये थे वैसे ही आंधी के समान चले गये। योजनों दूर जा जा कर गिरे और विश्वामित्र ने अपने ध्यान योग यज्ञ की पूर्त्ति करली।

कुछ दिनों तक राम लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रम में रहे। ऋषि ने उन्हें शस्त्र विद्या अस्त्र विद्या सब कुछ सिखाया वहाँ और भी विद्यार्थी इसी प्रयोजन से रहते थे। खेल, कूद वृक्ष पर चढ़ना, नदी में तैरना, लकड़ियां काटना, घोड़े दौड़ाना, कुश्ती, अखाड़ा सब कुछ हुआ करता था। और सब का रहन, सहन, खान, पान एक समान था। लोग यह समझते होंगे कि यह ऋषि आजकल के साधुओं के समान मठ बना कर रहते रहे होंगे। ऐसा नहीं था। यह आश्रम सबके सब विद्यालय थे और वहां नाना प्रकार की विद्याएँ सिखाई जाती थीं। कोई काम ऐसा नहीं होता था जो विद्यार्थी अपनी-अपनी रुचि, गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार नहीं सीखते थे। विश्वामित्र वहां अकेले नहीं थे और भी ऋषि थे। यह इस आश्रम के मुख्य अधिष्ठाता थे।

राम लक्ष्मण ने वहां रह कर बहुत कुछ सीखा। विश्वामित्र जान बूझ कर उन्हें अवध से लाये थे। यह ऋषियों का धर्म था कि द्विजाति या दो जन्मी सन्तान संस्कृत और शिक्षित दीक्षित हो। चौबीस वर्ष तक यह गुरुकुल में रहें। इसके पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करें। प्रणाली ही इस प्रकार की थी। गुरू किसी के वैतनिक कर्मचारी नहीं होते थे। वह स्वाधीन रीति से जंगल में रहते थे और बच्चों की शिक्षा उस समय के अनुसार करते थे। यह शिक्षा भी बदलती रहती थी और लोगों को बुद्धि और मन सम्बन्धी वृद्धि करने का अवसर था। इन सब की दृष्टि के सामने ब्रह्म का आदर्श रहता था। ब्रह्म में

ब्रह (बढ़ना) और मनन (सोचना) है और यह बच्चे इस आदर्श के अनुसार बढ़ते और सोचते रहते थे और इसी दृष्टि से उनके ऐसे जीवन का नाम ब्रह्मचर्य्य था। ब्रह्म (अर्थात् बढ़ने-सोचने) में चर्य्या करना ब्रह्मचर्य्य कहलाता था। जीवन का यह विभाग इसी काम के लिए था। अब अनसमझी से केवल स्त्री त्याग को ब्रह्मचर्य्य कहते हैं। यह नहीं समझते कि यह ब्रह्मचर्य्य का केवल एक अंश या अंग है। ब्रह्मचर्य्य बढ़ने और सोचने के समय का नाम था और विद्यार्थियों के पांच साधारण लक्षण हुआ करते थे जो ब्रह्मचर्य्य से सम्बन्ध रखते थे। वह यह हैं:—

काग चेष्टा बको ध्यानं, श्वान निद्रा तथैवच:।
अल्पाहारी स्त्री त्यागी, विद्यार्थी पच लक्षणम्॥

कौए की चेष्टा, बगले का ध्यान, कुत्ते की नींद, अल्पाहारी और स्त्री त्याग यह पांच लक्षण विद्यार्थियों के हैं।

शोक इस बात का है कि ब्रह्म, आत्मा इत्यादि तमाम शब्दों के अर्थों में उलट फेर हो गया। था कुछ और हो गया कुछ। राम और लक्ष्मण दोनों ने ऋषि के आश्रम में रह कर विद्या का लाभ उठाया, नई नई युक्तियां सीखीं और अपने मन से नई नई युक्तियां निकालीं।

प्रातःकाल उठ कर शौच स्नान करने के पश्चात साधन ध्यान का नियम था, फिर काम काज में लगते थे और दिन भर काम में लगे रहते थे। दिन में सोने का नियम नहीं था। सोने के लिए रात समय नियत था।

एक दिन विश्वामित्र ने अपने विद्यार्थीयों को समझाया—"छात्रवर्ग! दिन को काम करो रात को सोओ, दिन के रहते हुए न सोओ, दिन में खाओ, पीओ, खेलो, कूदो, पठन पाठन

करो, तुम्हारा करतब दिन चर्या हो और तुम दिनचर कहलाओ।

जो लोग दिन को सोते और रात को जागते और रात्रि समय में दिन का व्यौहार करते हैं वह निशचर और निशाचर होते हैं। निश कहते हैं रात को। रात की चर्य्या करने वाले निशाचर होते हैं।

दैवी सम्पदा दिन का खेल कूद और कर्तव्य है। देव संस्कृत शब्द 'दिव' से निकला है जिसका अर्थ खेलना है। आसुरी सम्पदा अंधकार की सम्पदा है जो रात को व्यौहार करती है। इन दौनों में यह भेद है। प्रकृति के जगत में दोनों सम्पदाओं के प्राणी हैं। कोई इनमें सुरी है कोई आसुरी है।

आसुरी सम्पदा का इष्ट खाना, पीना, सोना जागना आदि है। सुरी सम्पदा का इष्ट खाने, पीने, सोने, जागने क अन्तर्गत ब्रह (बढ़ना) और मनन [सोचना] है। यही ब्रह्म के लक्षण है और यही ब्रह्मचारी का लक्षण होना चाहिए। बढ़ो और सोचो, सोचो और बढ़ो, इसी का नाम ब्रह्मचर्य्य है, सच्चा ब्रह्मचर्य्य है।

बढ़ो बढ़ चलो बढ़ते रहना सदा तुम।
वृद्धि के सिद्धान्त गहना सदा तुम॥
बढ़ो सोचो दो बात कहना सदा तुम।
नहीं भ्रम की धार बहना सदा तुम॥
यह है ब्रह्म की चर्य्या, यही इष्ट करतब।
बढ़ो सोचो, यह काम मिल कर करो सब॥

तीसरा समुल्लास

राम और विश्वामित्र का सम्वाद

राम विश्वामित्र के यज्ञ की रख वाली करने गये थे। उनके आने के कई अभिप्राय थे। पहले तो यह कि वह सबसे अधिक प्रतिष्ठित कुल के राज कुमार थे। उन की शिक्षा में त्रुटि न रहने पाये। दूसरे उस समय सृष्टि कर्म के धर्म में हानि-कारक विघ्न प्रकट हो गये थे और बहुत बढ़ गये थे। ऋषि मुनि, राजा, महाराजा सब तंग आ गए थे। सब की यही इच्छा थी कि कोई व्यक्ति संसार में आ जाये जो इस असह्य दुख से मुक्ति दिलादे। राम का जन्म मुनियों ने इसी कर्तव्य के लिये समझ रक्खा था और उनकी शिक्षा भी आवश्यक थी। तीसरे विश्वामित्र को उनकी परीक्षा भी करनी थी कि वह उनकी परीक्षा में पूरे उतरते हैं कि नहीं।

राम ने यज्ञ की रक्षा की। राक्षस मारे और भगाये गये। उन्होंने उस समय की सारी विद्यायें भी सीख लीं। उनमें निराली उपज थी जिसे देख कर ऋषि दंग रहते थे।

अयोध्या में उन्हें कुछ वैराग होगया था जिससे वह उदास रहते थे। वशिष्ठ जी के उपदेश से उन्हें कुछ साधारण संतोष तो होगया था लेकिन वह कुछ नहीं था। वैराग की वृति दिन प्रति दिन बढ़ती ही जारही थी। यहां विश्वामित्र के आश्रम में आते ही उनकी उदासी जाती रही। काम काज में लगे, सबके साथ प्रेम और मित्रता करने लगे। देखते देखते कुछ के कुछ बन गये।

एक दिन ऋषि छात्र गणों के साथ आश्रम के बाहर बैठे हुए बात चीत कर रहे थे। राम लक्ष्मण पहुँचे, दंडवत प्रणाम

किया। ऋषि ने आशीर्वाद देकर पूछा—"राम! तुम मुझसे कुछ प्रश्न पूछने आये हो"?

राम ने उत्तर दिया--"हां, भगवन ऐसा ही है।"

विश्वामित्र - "तो पूछो।"

राम-' यह यज्ञ जो आर्य जाति वाले करते हैं इसका अभिप्राय क्या है? और यह न किया जाय तो इससे हानि क्या हैं?"

विश्वामित्र ने राम को गहरी दृष्टि से देख कर उत्तर दिया—"राम! तुम जन्म के योगी हो। तुम्हारे अन्दर बड़ी २ सिद्धियाँ और शक्तियां दबी पड़ी हैं, जिनका समय समय पर स्वयं विकास होता रहेगा। मैंने तुम्हारे प्रश्न को सुन कर तुम्हारे माथे और आँखों को देखा। उनमें सूर्य्य का विशेष अंश झलकता है, जो सूर्य्य वंशियों का मुख्य चिन्ह हैं। प्रश्न साधारण है लेकिन मुझसे आज तक किसी ने इसको नहीं पूछा था। सब बाहर मुखी दृष्टि वाले हैं। अन्तर मुखी दृष्टि किसी किसी में होती है। नहीं तो सब के सब रीति रस्म और बाहरी पाखंडों में पड़े रहते हैं। मैं तुमको आज सच्चे अन्तरी यज्ञ का महत्व बतलाऊँगा। वशिष्ठ ने तुमको गायत्री मंत्र के विधान में केवल मंत्र देकर दीक्षा दी है। शिक्षा का काम मुझे सौंपा गया है।"

यह कह कर विश्वामित्र राम को अपनी कुटिया में अलग ले गये और उन्हें एकान्त में लेजा कर यज्ञों के अन्तरी साधन की गुप्त विधि सिखाई। उसका संक्षिप्त वृतान्त इस प्रकार है—

"यज्ञ शब्द संस्कृत धातु 'यज्' (पूजा) से बना है। यज्ञ और कुछ नहीं है केवल पूजा मात्र है। पूजा इष्ट पद की है। वह इष्ट पद सावित्री (सूर्य्य) है, जो बाहर नहीं है, तुम्हारे अन्दर है और तुम उसी के अंश और वंश हो।

भानु रूप मालिक सुन भाई । नर देही में रहा छुपाई ॥
सूरज वँश भानु सावित्री । शब्द अर्थ का भेद गायत्री ॥
कोई २ अंश कोई २ वंश । अंश वश में व्यापा हंस ॥
हंस समान जगत व्यौहार । यह है यज्ञ विचार का सार ॥

यज्ञपूजा है। इस पूजा में पशु का बलिदान किया जाता है। बिना पशु के बलिदान के यज्ञ की पूर्ति नहीं होती। पूजा इष्ट पद की हो। इष्ट पद गुरू है।

मंत्र मूलं गुरू वाक्यम, मूल पूजा गुरू पदम् ॥
मूल ध्यानम् गुरू मूर्ति, मोक्ष मूलम् गुरू कृपा ॥॥

पशु नाना प्रकार के होते हैं। पश् संस्कृत धातु है, इसका अर्थ है बांधना रोकना। जो बाँधा जाय और रोका जाय वह पशु है। यज्ञमें इस पशु का बांधना और रोकना ही बलिदान है। पहिला पशु अजा या अज है। अ (नहीं) ज (जन्मा) जो नहीं जन्मा वह अज है। यह प्रकृति प्रधान कभी जन्मी नहीं, इसलिये यह अज कहलाती है। शरीर प्रकृति से बनता है। यह अज है। इसे पूजा (यज्ञ)में बाँधो, रोको, इसके बलि का दान करो। यह इष्ट देव के अर्पण हो। **यह अजामेध है।** उसे बकरा भी कहते हैं।

गो नाम है पृथ्वी का, इन्द्रिय का, गाय का। इस यज्ञ का तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों को बांधो रोको और इनके बल का दान करो। वह इष्ट पूजा के अर्पण हो। **यह गोमेध यज्ञ है।** अश्व, संस्कृत धातु अश (फैले हुए से निकला है। यह मन है जो सारे शरीर में फैला हुआ है। इसे बांधो, रोको और इसके बल का दान करो। वह इष्ट के अर्पण हो। **अश्वमेध यज्ञ** का यह भेद है। मन घोड़े के समान चंचल है, जो इसे रोक सकता है वह विजयी होता है। अश्व घोड़े को कहते हैं।

नर शब्द संस्कृत धातु 'नृ' (रास्ता दिखाने वाले) से

निकला है। इस सारे शरीर, मन और इन्द्रियों का रास्ता दिखाने वाला, नियम में रखने वाला, मनुष्य है। मनुष्यता का नाम नरपना है। इस मनुष्यता और नरपने के भाव को रोको, बांधो, इष्ट के अर्पण करो, उसके सम्पूर्ण बल का दान दो। यह **नर मेध यज्ञ** है।

यज्ञ में हनन नहीं है। शरीर, इन्द्री, मन, और नरपने की रोक थाम का मन्तव्य है। चित्त की वृति के एकाग्र होने से सिद्धि शक्ति प्राप्त होती हैं। यज्ञ का यथार्थ तात्पर्य तो यह है, मगर बाहर मुखी लोग अजा को बकरी, गो को गाय, अश्व को घोड़ा, नर को मनुष्य मान कर मार डालते हैं और उनका माँस भून कर खा जाते हैं।

'मेध' कहते हैं समझाने को। अजामेध यज्ञ, गो मेध यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ और नरमेध यज्ञ का अर्थ शरीर, इन्द्रिय, मन, और मनुष्यपने को समझ कर इष्ट की पूजा करना यह योग की विधि है।"

राम—"मैं बड़ी भूल में था। यज्ञ को कुछ का कुछ समझ रहा था।"

विश्वामित्र - "जिसमें जगत का प्रेम (विश्वमित्रता) नहीं है वह ऐसा ही समझते हैं। उन्हें तुम ऐसा ही समझने दो। यथार्थ समझ कर अपना काम बनाओ।"

राम—"बाहर मुखी यज्ञों का विधान क्यों है ?"

विश्वामित्र—"यह मनुष्य मात्र समाजिक नियमों में बँधे रहें, मिल कर रहें, मिल कर चलें, मिल कर काम करें, मिल कर उठें-बैठें। मेल मिलाप से उनमें बल होगा। अन्तरमुखी यज्ञ सब के लिए नहीं है। वह योग साधन है जिसमें अन्तरी अग्नि को उत्तेजित कर के सिद्धि प्राप्त की जाती है।"

राम—"क्या मुझे इसकी आवश्यकता है ?"

विश्वामित्र—"तुम जन्म के योगी हो। तुम्हारे अन्तर में सब कुछ पहिले ही से है। केवल दबे हुए संस्कारों को जगा देना है और मैं इसी लिए तुमको यहाँ लाया हूँ।"

चौथा समुल्लास

राम विश्वामित्र संवाद।

अहल्या तरण

सोने को सुहागा मिल गया। गुरू को सच्चा चेला और चेले को सच्चा गुरू प्राप्त हुआ। यह मेल कभी कभी संयोग से होता है। सदा नहीं हुआ करता। गुरू और चेला दौनों उत्तम थे। जहां चेला कपटी और गुरू पाखण्डी होता है वहां दौनों के दौनों चौरासी के गहरे खड्डे में गिरते हैं और जहां निष्काम निष्प्रयोजन और निःस्वार्थ सम्बन्ध होता है, दौनों के दौनों नर नारायण के सदृश जगमगा उठते हैं।

दीक्षा, शिक्षा, मंत्र, तंत्र, योग, ज्ञान, शस्त्र, अस्त्र इत्यादि विद्यायें विश्वामित्र ने राम को सिखाईं।

विश्वामित्र ने एक दिन कहा—"जान लेना ही विद्या नहीं है। जब तक यह विद्या अंग संग न बन जाये तब तक लाभदायक होने के बदले यह हानि कारक होती है। यह साधन और अभ्यास में आजाय तब तो बात है, नहीं तो निष्फल और निष्प्रयोजन है"।

राम—"फिर क्या किया जाये ?"

विश्वामित्र—"इसे व्यौहार में लाया जाय। परमार्थ में

व्यौहार और व्यौहार में परमार्थ हो।"

राम—"इसका प्रबन्ध ?"

विश्वामित्र—"देशाटन, देश देश की यात्रा।"

राम—"मैं आपकी आज्ञा पालन करने के लिये तत्पर हूँ।"

विश्वामित्र—"तो चलिए जनकपुर हो आयें। वहां सीता का स्वयंवर होने वाला है। सारे देशों के भूप, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, आर्य, अनार्य, दिनचर, निशचर, भारतवर्षीय और यवन सब एकत्रित होंगे। दृश्य बड़ा सुहाना होगा। वहां तुम्हारी विद्या की परीक्षा का अवसर मिलेगा। और जो कुछ मैंने सिखाया है वह कसौटी पर कसा जायगा।"

घर के बाहर चल के कीजै यात्रा।
तब लगैगा घर का बाहर में पता।
बाहरी और अन्तरी हो साधना।
तब बनेगी इष्ट की आराधना॥
जो बहर सुख हैं वह अन्तर सुख नहीं।
जो हैं अन्तर सुख वो बाहर सुख नहीं॥
स्वप्न और जागृत का जब मेल हो।
तब ही इस जीवन का खेल हो॥
राम तम तो सब में रमता राम हो।
रम चलो रमने में रम का काम हो

राम लक्ष्मण और विश्वामित्र तीनों चल खड़े हुए। पूरब की ओर यात्रा करने लगे। रास्ते में ऊसर, जंगल, नदी, खेत, बाटिकायें देखीं। गाधीपुर (गाजीपुर) को देखा जो राज के समय में गाधी सुत विश्वामित्र की राजधानी थी। इधर गये उधर गये। फिर नाक की सीध में पूरब की ओर आगये।

वहाँ गौतम ऋषि का आश्रम था। एक पत्थर की शिला पड़ी हुई थी।

विश्वामित्र ने कहा—"इसे अपना पांव लगादो।"

राम ने पांव से उसे छू दिया। या तो वह पत्थर की शिला थी या सर्पाकार होकर धुँए के आकार में ऊपर उठी और शब्द करते हुए राम के सामने खड़ी होगई। राम चकित हुए। ऐसा दृश्य उन्हों ने पहले नहीं देखा था। विश्वामित्र से पूछा—"भगवन! यह क्या लीला थी?" विश्वामित्र ने हँस कर उत्तर दिया—"इस आश्रम में एक ऋषि रहता था जिसका नाम गौतम है वह तर्की कुतर्की था। न्याय विद्या का महा पण्डित! और उसे अपने तर्क पर इतना घमंड था कि ब्रह्मा और वृहस्पति भी सामने आते तो अपना मुँह नहीं खोल सकते थे। उसके एक स्त्री थी। उसका नाम अहिल्या था। बड़ी सुन्दर, कोमलहृदय, कमल के आकार का रूप! ऋषि उस पर मोहित था। इंद्र ने कहीं उसे देख लिया। उसकी सुन्दरताई पर लट्टू हो गया। अहिल्या इससे बहुत बचती थी। अन्त में वह गौतम के भेष में आया और उस देवी के पतिव्रत भाव को भंग कर दिया। जब ऋषि को यह समाचार मिला क्रोधित होगया। अहिल्या को श्राप दिया कि पत्थर होकर पड़ी रह। इसने नम्रता से पूछा—"कब तक?" ऋषि ने उत्तर दिया कि त्रेता युग के पिछले भाग में रामचन्द्र के नाम रूप में ब्रह्म का अवतार होगा। जब उनका पाँव तुझ पर पड़ेगा तू अपने रूप में प्रकट होकर मुझ से मिलेगी और देखिय ऐसा ही हुआ।

अहिल्या ने मुँह खोला:—

पड़ गई मँझधार में थी मेरी नाव।
सूझता मुझको न था कुछ पेच दाव॥

जड़बनी और पत्थर की शिल में होगई।
मूढ़ता की नींद व्यापी सोगई ॥
क्या हुआ कैसे हुआ कुछ सुध नहीं।
मैं थी बे सुध मुझ में कुछ सुध बुध नहीं।
आप ही ने आ के तारा इस घड़ी।
मैं शिला के रूप रहती थी पड़ी ॥
आपने करुणा से अब चेतन किया।
और मुर्दे को नया जीवन दिया ॥
रमने वाले राम रमता धन्य तुम।
जग के करता और धरता धन्य तुम ॥

यह सुहाना राग सुहानी धुनि में गाती हुई अहिल्या स्वर्ग की ओर अप्सरा बन कर उड़ गई। राम को आश्चर्य हुआ। वहाँ बैठ गये। कुछ थके मांदे से थे, सस्ताने लगे। देर तक वाणी बन्द थी। कोई कुछ नहीं बोला। अन्त में राम ने कहा-'इस कथा प्रसंग का सम्बन्ध किससे है? विश्वामित्र हँसे—"आपसे है मुझसे है और मनुष्य मात्र से है।"

राम—'मैंने भी ऐसा ही समझा।"

विश्वामित्र—"आप न समझते तो समझता कौन!"

राम—"अहिल्या को धुँए के आकार में उठते देखकर मैंने ऐसा ही समझा।"

विश्वामित्र—"आपका समझना ठीक है।"

राम—"तो अब लगे हाथ इस रहस्य को खोल भी दीजिए।"

विश्वामित्र—"यह रहस्य तो जनकपुर में चल कर खुलेगा। हां, यहाँ इस कथा प्रसंग की परिभाषाओं पर प्रकाश डाल देता हूँ।"

"गौतम संस्कृत शब्द गौ (आँख) और तम (अन्धकार) को कहते हैं। अन्धकार वाली आंख वाला गौतम तामसिक मन है जो तर्क वितर्क उठाया करता है और अपने समान किसी को नहीं समझता। इन्द्र इसका अहंकार है जो सबको अपने आधीन रखना चाहता है और अहिल्या उसकी तमोगुणी शक्ति है जो सुन्दर है। इस शक्तिसे इन्द्र रूपी अहंकार उत्पन्न हुआ, जिसने इसे वशीभूत कर लिया। गौतम को घृणा हुई, उसे श्राप दिया और वह पत्थर की शिला बन कर जम कर मूलाधार में बैठ गई। वह सांप या नागिन के समान कुण्डली मार कर बैठी, इसलिये उसका नाम अहिल्या रक्खा गया। अहि (सप) और ल्या (ले) को कहते हैं।"

"यह मूलाधार की कुँडलनी शक्ति है। इन्द्र संस्कृत धातु इंदि (बल) से बना है। यह तमोगुणी मन (गौतम) का तामसिक अहंकार है। जब किसी तर्क करने वाले मनुष्य को समझ आजाती है कि उसका तर्क दिखावे और हठ धर्मी का था, तो घृणा होना साधारण बात है। और तब उसकी शक्ति नीचे दब जाती है। फिर जब खेलने वाला राम जो सबको खेल समझता है उसे पांव लगा देता है तब फिर जाग उठती है।"

राम—"मैंने सुना है कि गौतम ने इन्द्र को श्राप दिया था कि तेरा शरीर भग के आकारों का हो जाये।"

विश्वामित्र—"जब मनुष्य को अपने अहंकार की बुराई प्रतीत हो जाती है तो उसे धिक्कारता है और वह टुकड़े २ हो जाता है और वह सेवा करने लग जाता है। घमंड टूट जाता है।"

भग शब्द संस्कृत धातु भज (सेवा) से बना है और फिर इस में सेवा करने की अनेक वृतियाँ आ जाती हैं। यह

इन्द्र के भग धारी होने का रहस्य है। कथा प्रसंग का आशय यह है।"

पांचवां समुल्लास

राम विश्वामित्र का सम्वाद (लगातार)

गंगा की कथा

राम लक्ष्मण और विश्वामित्र ने छिपी हुई और दबी हुई सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति के उभारने के पश्चात् आगे की ओर पग बढ़ाया। गंगा की धार हर हर करती हुई बह रही थी। उसके दोनों ओर खेती लहलहा रही थी। आम, जामुन, बड़ और पीपल की घनी छाया वाले वृक्षों की डालियों पर पक्षी पखेरू चह चहाते हुए फुदक रहे थे। कहीं कहीं बीच २ में रेत के इकट्ठा हो जाने के कारण पृथ्वी प्रकट होती थी। वह टापू और द्वीप के समान दिखाई दे रही थी। घाट पर हजारों की भीड़ था। संम्भव है कि किसी पर्व का दिन रहा हो। सब के सब गंगा में तैरते, डुबकियां लगा लगा कर न्हा धो रहे थे और यह मंत्र उच्चारण करते जा रहे थे।

हर हर गंगा भागीरथी, पाप न रहै एकौ रती।
गंगा गंगा जो नर कहै, नंगा भूका कभी न रहै॥

तीनों पथिकों ने घाट का सुहाना दृश्य देखा। स्थान बहुत रमणीक था। घाट पर वस्त्र उतार कर रख दिये। गंगा में डुबकियाँ लगा कर भली भांति न्हाये धोये। रास्ते का मैल उतर गया। घाट वाले गंगा-पुत्र ने तीनों के माथों पर मलियागिर चंदन का तिलक लगा दिया।

फिर यह नाव पर बैठे, नदी क पार आये और आगे को ओर पैदल बढ़े।

राम ने पूछा—"भगवत्! गंगा नदी की महिमा क्यों इतनी अधिक है? नदी तो नदी! सब में पानी ही पानी भरा हुआ है लेकिन यह सब में महा श्रेष्ठ समझी जाती है।"

विश्वामित्र ने उत्तर दिया—"गंगा साधारण नदी नहीं है। यह पतित पावनी है। यह नदी तुम्हारे पूर्वज हिमालय पर्वत से खोद कर लाये थे और यह आर्यवर्त के एक सिरे से दूसरे तक बहती हुई महा सागर में जाकर मिल रहती है।

इसके पानी में अमृत का प्रभाव है। कभी न सड़ता है न उसमें सड़ाइंद आती है। बरसों यहाँ तक कि उसे सौ-सौ वर्ष तक लेजाकर रक्खो, ज्यों का त्यों बना रहेगा। गंध तक न आवेगी। और दूसरे पानी में उसके दो चार दस बूँस मिलादो तो उसका प्रभाव भी बदल जाता है और वह भी गंगाजल के समान हो जाता है। यह रोगों की औषधि भी है। इसके सेवन करने वाले का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। इसके जल के बहुत गुण हैं।"

राम—"इसको मेरे पूर्वज कैसे लाये थे? मैं इस वृत्तान्त को सुनना चाहता हूं।"

विश्वामित्र—"तुम्हारे कुल में एक राजा हुआ है उसका नाम सगर था। उसकी सहस्रों संतति थीं। दैवसंयोग से देशमें अकाल पड़ा। प्राणी अन्न बिना मरने लगे। खेती बाड़ी सूख गई। हा हा कार मच गया। तब सगर ने अपने लड़कों से कहा। तुम जाओ हिमालय पर्वत से एक नहर खोदो और उसे जहां तहां से घुमा फिरा कर महा सागर तक पहुंचादो। इस नहर के किनारे-किनारे बड़े-बड़े नगर और ग्राम बसाये जायें।

पानी की अधिकता रहे, खेती की जाये और प्रजा दुखी न होने पाये। सगर की संतति आज्ञाकारी थी। हजारों लड़के सब के सब उठ खड़े हुए। उत्तरा खंड की ओर गये। खोद खाद किया। हिमालय की चोटी से लेकर महासागर तक पृथ्वी खोद डाली। गहरी खाई एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक बन गई। इन लड़कों के पास एक घोड़ा था जो रास्ता दिखाता था। यह उसकी मामता में फँसे और अपनी सफलता पर इन्हें घमंड हो गया। इन्द्र देवताओं के राजा को भय हुआ कि कहीं यह पराक्रमी पुरुष मिल जुल कर उसका इन्द्रासन न छीन लें। वह ताक में लगा हुआ था और उन्हें छलना चाहता था। घोड़े को चुरा लिया। महासागर के पास कपिल ऋषि समाधि लगाये हुये बैठे थे। इस इंद्र ने घोड़े को लेजाकर उसके पास बाँध दिया। सगर के लड़के उसे खोजते खोजते कपिल के आश्रम में पहुंचे। वहाँ उसे बंधा हुआ पाया। समझा यह चुरा लाया है। ऋषि का बुरा भला डाकू, बटमार, उठाईगीरा और चोर कह कर गालियां दीं। कपिल को क्रोध आया। आँखें खोलीं और यह सब के सब उनकी आंखों की क्रोधाग्नि के तेज से जल कर राख हो गये।"

सगर को बहुत दिनों तक इनका पता नहीं चला और वह उनके दुख में मर गया। इस सगर के एक और लड़का था जिसका नाम असमँज था। यह उसके पीछे राजा हुआ। यह नहर खोदने नहीं गया था, युवराज था। इसने अपने भाइयों का पता लगाना चाहा किंतु पता नहीं लगा। इसी के कुल में भागीरथ नामक एक प्रतापी राजा हुआ है, जिसे इनके कपिल ऋषि के क्रोधाग्नि से जल कर मरने का पता लगा। ऋषि के पास गया उनसे मिला। ऋषि को दया आई। उसने कहा गंगा को लाओ। गंगा का जल जब इनकी राख की ढेरी पर पड़ेगा

तब इनकी सद्गति होगी। भागीरथ उत्तर खंड में कैलाश पर्वत पर पहुंचा। वह शिव भगवान् का स्थान था।

यह गंगा के निमित्त तप करने लगा। बरसों तप करने पर वह धार ऊपर से गिरी। शिवजी की जटा जूट में आकर समा गई। यह निराश हुआ। फिर शिवजी को मनाने लगा। उसका तप और साहस देख कर शिवने अपनी जटाजूट को निचोड़ा। इससे तीन धारें निकलीं—एक ऊपर थी, उसका नाम **आकाश गंगा** है दूसरी पृथ्वी पर गिरी वह **भागीरथी कहलाती है,** क्योंकि भागीरथ ने उसके लिए तप किया था और तीसरी धार पाताल को चली गई उसका नाम **पाताल गंगा** पड़ा।

जिस समय शिव ने अपनी जटा निचोड़ी, यह धार बह निकली। भागीरथ अपने घोड़े पर सवार हुआ। आगे आगे यह और पीछे पीछे हर हराती हुई गंगा की धार! वह इस प्रकार गंगा को महासागर तक ले गया। नहर पहिले ही से खुदी हुई थी। जब गंगा जल सगर के मरे हुए लड़कों की राख की ढेरी पर पड़ा, उनकी सद्गति हुई और इस धार ने उसे बहा कर महासागर तक पहुंचा दिया।

इस प्रकार यह गंगा आकाश से उतरी थी। आर्यवर्त्त के बड़े बड़े नगर काशी, प्रयाग आदि इसी के किनारे बसे हुये हैं। ऐ राम! यह **गंगा** का कथा प्रसंग है।"

इस कथा के पश्चात् राम और विश्वामित्र थोड़ी देर तक चुप रह कर विचार करते रहे।

राम बोले—"कथा तो विचित्र है, इसका आशय क्या है?"

विश्वामित्र ने कहा—'इसका आशय भी बहुत विचित्र

है। जब अहिल्या. कुण्डलनी शक्ति मूलाधार से उठकर ऊपर की ओर जाने लगती है तो सुषम्ना नाड़ी जो जीवन या अमृत की धार से सम्बन्ध या नाता जोड़ती है इस मनुष्य शरीर में **गंगा का नाम पाती है।** यह ऊपर है, नीचे है और बीच में है। सुषमना नाड़ी मूलाधार से मेरुदंड की सिधाई में बराबर ऊँचे तक चली जाती है और सब को तृप्त करती है। मुझे विश्वास है वशिष्ठ ने तुमको दीक्षा देते समय शिखा और सूत्र का रहस्य बताया होगा।"

राम—"निस्सन्देह वशिष्ठ जी ने समझाया तो था। वह दीक्षक थे आप शिक्षक हैं। आपकी शिक्षा सब पर पूरा पूरा प्रकाश डालेगी।"

विश्वामित्र—"होना तो ऐसा ही चाहिए और ऐसा ही हो रहा है।"

राम—"कथा प्रसग के अन्तर्गत जो नाम आये हैं उनका अर्थ इस विषय को स्पष्ट कर देगा।"

विश्वामित्र—"ऐ राम! तुम सूर्य्य के वंशज हो जो मनु कहलाता है। इस सूर्य्य मंडल का कर्ता धर्ता सूर्य्य है। यह जीवन ज्योति और जीवन को गर्मी का आधार है और यही प्राण का भंडार और प्राणों का प्राण भी कहा जा सकता है। प्राण सब का वीर्य है और चन्द्रमा रई (माद्दा, प्राकृतिक सामिग्री) का भंडार है। सृष्टि सूर्य्य और चांद के मेल से होती है, जैसे पुरुष और स्त्री का संयोग संतति उत्पन्न करता है। जिसमें सूर्य्य के प्राण का अंश अधिक होता है वह सूर्य्य वंशी और जिसमें चन्द्र के रई (माद्दा) का अंश अधिक होता है वह चन्द्र वंशी कहलाता है। जैसे प्राणी संसार में मरते और खपते रहते हैं वैसे ही इन सूर्य्य और चाँद की भी

दशा होती है।

इस सूर्य्य की आयु को मन्वन्तर कहते हैं। जब तक एक सूर्य्य जीता जागता रहता है उस समय का मन्वन्तर नाम रक्खा जाता है। एक मन्वन्तर का एक ही सूर्य्य होता है और उसकी आयु इस मन्वन्तर की दृष्टि से सौ बरस की होती है।

वर्त्तमान सूर्य्य का नाम वैवस्वत मनु है। इसके पीछे जो मनु होगा वह रैवत कहलायेगा।

इसी वर्त्तमान सृष्टि में ऋषियों के कथनानुसार अब तक छै मनु हो चुके हैं। (१) स्वायम् (२) स्वारोचिष(३) उत्तम (४) तामस (५) चाक्षुप (६) वैवस्वत और (७) रैवत इत्यादि-इत्यादि। मनवन्तर में चौदह मनु होते हैं।

छठा समुल्लास

राम और विश्वामित्र का सम्वाद (लगातार)

गँगा की कथा

राम—"बाहरी गंगा की कहानी बहुत विचित्र है। क्या इस कथा का सम्बन्ध ब्रह्मांड और पिंड से भी है?"

विश्वामित्र—"ब्रह्मांड और पिंड की सदृशता है। जैसा वह है वैसा ही यह भी है। यह गंगा ब्रह्म में या कम से कम उसके शरीर ब्रह्मांड में है, वह ब्रह्मांड की उपेक्षता सारे लोकों में भी है। ऊपर की रचना में यह आकाश गंगा कहलाती है, पृथ्वी पर आने से वह पार्था या मृत्यु लोक की गंगा का नाम पाती है और पाताल में जाने से वह पाताल गंगा कहलाती है।

'गंगा' शब्द संस्कृत धातु "गम्" (चलने) से निकली है। यह चलती है, चलती रहती है, इसलिए इसका नाम गंगा है। यह जीवन की धार है और सबको जीवन का भाग इसी गंगा से मिलता है। पिंड या मनुष्य के शरीर में जिस रास्ते से होकर यह गंगा बही हुई है या बहती रहती है उसको सुषम्ना नाड़ी कहते हैं। यह ऊपर से नीचे तक है और (शिखा) या (चोटी) से निकल कर सूत्र के धार में चलकर पृथ्वी तत्त्व के मूलाधार तक आती है जहाँ मेरुदंड की जड़ है। नीचे इसकी सब जगह छाया मात्र है जिसे आस भास कहते हैं। ब्रह्मांड और पिंड में इस गंगा की धार इस रूप में बही है।"

राम—"भगवन्! छाया या आस भास क्या और कैसा है?"

विश्वामित्र—"साधारण रीति से सब के तीन रूप होते हैं—कारण, सूक्ष्म और स्थूल। कारण में एक प्रकार की बीज रूपता है। सूक्ष्म और स्थूल उसकी छाया है और छाया की गिनती नहीं हो सकती। वह अनेक है और उसका कथन अनेक बाद कहलाता है।"

सूक्ष्म उसकी छाया है जो शुद्ध, विशुद्ध और निर्मल होती है और स्थूल उसकी ठोस छाया है।

तुम्हारे शरीर भी तीन हैं—कारण, सूक्ष्म और स्थूल। कारण सत है, सूक्ष्म चित है जो मिलौनी से उत्पन्न होता है और स्थूल उसका ठोस रूप है जो आनन्द कहलाता है। इस दृष्टि से तुम्हारा शरीर सत, चित और आनन्द है।

कारण शरीर सत है जिसमें केवल सत्ता का भान होता है। सूक्ष्म मन है जो सोचता विचारता है और यह सोच विचार दो पदार्थों की मिलौनी से होता है जो सत और आनंद कह-

लाते हैं और आनन्द स्थूल अवस्था है।

सत-चित-आनंद—"इसी शरीर में है और यह और कुछ नहीं है केवल सत, रज और तम तीन गुण हैं।"

राम—"आपने मेरे भाव और विश्वास पर पानी फेर दिया।"

विश्वामित्र—"वह कैसे?"

राम—"मैं अब तक सोचे बैठा था कि आनंद केवल ईश्वर में है और चित चैतन्य में है और सत तम की अवस्था है जो स्थूल है।"

विश्वामित्र—"तुम्हारा विचार एक प्रकार ठीक है, लेकिन वह एक ही प्रकार पर ठीक है। ईश्वर का आनंद इसी स्थूल शरीर में प्रकट होता है जिसे तुम स्थूल कह रहे हो। केवल ईश्वरानंद ही नहीं बल्कि विषयानंद, ज्ञानानंद, ब्रह्मानंद, भोगानंद, विलासानंद, विचारानंद, सारे आनंदों का स्थल यही स्थूल देह है। सब आनन्द इसी से सम्बन्ध रखते हैं और इसी में सब आनन्दों का भान है। यह आनंद जब भोगे जायेंगे, इसी स्थूल शरीर में भोगे जायेंगे। दूसरी जगह इनका भान न है न होता है और न हो सकता है।"

राम—"बात समझ में आती है, आगई और आरही है। सत में सत्ता मात्र, चित में चित्ता मात्र और आनन्द में आनंदा मात्र है। और इसी स्थूल देह में वह भोगे जा सकते हैं। यहां ही हम खाते पीते विचारते और सब का रस लेते हैं।"

विश्वामित्र—"ठीक है, तुम समझ गये।"

राम—"इन शरीरों के धर्म क्या हैं?"

विश्वामित्र—"कर्म, ज्ञान और उपासना।

कर्म का स्थल यह स्थूल शरीर है। कर्म स्थूल शरीर में

होते हैं। ज्ञान का स्थल सूक्ष्म शरीर या मन हैं। सारे विचार, विवेक, अनुभव, अनुमान मन ही में फुरते और मन से उतर कर स्थूल देह में कर्म के रूप में प्रकट होते हैं और उपासना का स्थल केवल कारण शरीर है और यह सब से ऊँचा है और इसका फल भी स्थूल शरीर में प्रकट होकर अपना खेल दिखाता है।"

राम—"अब तक मैंने समझा था कि ज्ञान सबसे ऊँचा मार्ग है। अब आप उपासना को ऊँचा बताते हैं।"

विश्वामित्र—" ज्ञान ऊंची अवस्था नहीं है। वह केवल बिचली अवस्था है और उपासना ऊंची अवस्था है।"

राम—"कर्म, ज्ञान और उपासना का करने वाला कौन है ?"

विश्वामित्र—"मन।"

राम—"मन का काम तो आपने विचार और ज्ञान बताया है।"

विश्वामित्र—"यह इसका अपना मुख्य धर्म है। नहीं तो करने धरने वाला सब मन ही मन है। स्थूल और कारण में क्रिया शक्ति नहीं हैं। सत और तम दोनों क्रिया वाले नहीं हैं। क्रिया केवल रज में है, जो सत और तम के छाया की मिलौनी या सम्मिलित अवस्था है।"

"ऐ राम ! मन ऊपर जाता है, नीचे जाता है और बीच में फैलता है। नीचे स्थूल देह हैं, ऊपर कारण देह है और बीच में सूक्ष्म देह है।"

"जब मन स्थूल देह में आता है उसकी धार से जीवित होकर आंख देखती है, कान सुनता है, नाक सूँघती है, वाणी बोलती, पाँव चलता और हाथ पकड़ता है और जब मन

अपने निजस्थान बीच में बैठता है तब सोचने वाला, अनुमान करने वाला और ज्ञान वाला बनता है। इसका स्थान बीच में है। जब यही मन ऊँचा चढ़कर कारण देह में उपस्थित होता है तो इसी उपस्थित होने का नाम उपासना है। उपासना संस्कृत के दो शब्द उप [समीप] और आसन [बैठने] से बना है। तुम इस युक्ति से समझ सकते हो कि ज्ञान ऊँची अवस्था है या उपासना ऊँची अवस्था है। कर्म निचला, ज्ञान बिचला और उपासना उँची है।"

राम—"यह तो समझ गया। अब इस विषय में अधिक प्रश्न नहीं करना है।"

सातवाँ समुल्लास

जनकपुर में आगमन

गंगा को पार करके तीनों पथिक आगे की ओर चले। जनकपुर के समीप आये। जनक बड़ा प्रतापी राजा था। यह राजा ही नहीं था, बहुत बड़ा ज्ञानी ध्यानी था। ऋषि, मुनि और उस समय के बड़े बड़े अनुभवी पण्डित, तपस्वी, योगी उससे शंका निवारण करते और ज्ञान की प्राप्ति करते थे। वह इन सबका गुरु कहलाता था। शरीरधारी होते हुये वह अशरीर था उसमें शरीर का अध्यास नहीं था। जीवन मुक्ति की ऊँची अवस्था को पार करके वह जीते जी देह में रहता हुआ विदेह (देह रहित) कहलाता था।

उस राजा के नगर का क्या कहना! देश बसा हुआ! नगर के चारों ओर रमणीक वाटिकायें लगी हुई! लहलहाती

हुई खेती ! सब के सब कला कौशल में निपुण ! ऊँचे ऊँचे भूधरे दूर से दृष्टि में आते थे। उन पर सोने के कलश जगमगा रहे थे।

विश्वामित्र ने एक रमणीक अंबराई (आम की वाटिका) देखी। राम से कहा—"यह स्थान उत्तम है, तपस्वियों के रहने योग्य है। यहां ही रहना उचित है।"

राम ने उत्तर दिया—"जैसी आपकी आज्ञा।"

और एक सघन छाया वाले बट (वृक्ष) के नीचे इनका डेरा डाला गया।

जनक ने सुना कि मिथिला नगर के समीप विश्वामित्र ऋषि दो बालकों के साथ आकर ठहरे हैं, वह इनसे मिलने आया, दण्ड प्रणाम किया और परस्पर कुशलाई पूछी गई।

जब जनक की दृष्टि राम और लक्ष्मण के रूप पर पड़ी, देखते ही मोहित हो गये। ऋषि से पूछा—"यह किसके बालक हैं ?" विश्वामित्र ने उत्तर दिया—"यह अयोध्या के राजा दशरथ के लड़के हैं। इनका नाम राम और लक्ष्मण है।"

जनक उठकर दोनों राजकुमारों से मिले, कहने लगे मैं धन्य हूँ और मेरा नगर धन्य है जिसे आपने आज अपने आगमन से सुशोभित किया है। अब आप नगर में पधारिये और मुझे अपनी सेवा का अवसर प्रदान करके कृत्य कृत्य कीजिये।

तीनों उठे, जनक के साथ घर में आये और उसकी पाहुन-शाला में ठहरे। जनक ने अच्छी प्रकार से उनके रहने सहने का प्रबन्ध किया। सबने खाया, पिया, सोये और सुख आनन्द से रात काटी। जब प्रातःकाल का जगमगाता हुआ सूर्य निकला यह उठे, न्हाये धोये, पूजा पाठ किया।

लक्ष्मण को नगर देखने की इच्छा हुई। राम ने गुरू से कहा—'लक्ष्मण जनकपुर को देखना चाहते हैं। आपके भय से मुंह को नहीं खोलते।" विश्वामित्र ने कहा—"भय किस बात का ? तुम विद्यार्थी हो। जगह जगह फिरने से विद्या में वृद्धि होती है। जाओ देख दिखा आओ। इससे अच्छी और कौन बात होगी। मैं यहाँ ही अकेला रहूगां। मेरा नगर में जाना उचित नहीं है।"

गुरू की आज्ञा पाकर दोनों राजकुमार उठे। नई जगह थी कभी देखा सुना नहां था। कोई साथ होता तो वहां के सुन्दर स्थानों को ले जाकर दिखा देता। लेकिन ज्योंही यह पाहुनशाला के बाहर निकले बहुत से मचले लड़के इनके साथ हो लिए। राम और लक्ष्मण की जोड़ी विचित्र थी। देखने वाले चकित हो रहे थे। नगर वासी तो इनके समीप नहीं आये। नगर के लड़के चारों ओर हो लिये। थोड़ी ही देर में उनके साथ इनकी मित्रता हो गई। बच्चों में सभ्यता का छल कपट नहीं होता। वह इन्हें इधर ले गये उधर ले गये। प्रेम प्रीति से नगर के सुन्दर स्थान दिखाते गये।

राम लक्ष्मण के आने का समाचार मिथलापुर में आग के समान फैल गया। जिन लोगों ने सुना घर के काम काज छोड़ कर इनके देखने को दौड़े और सहस्रों नेत्रों से इन का सुन्दर स्वरूप देख देख कर प्रसन्न हुये।

राम का रंग नीले कमल के समान! लक्ष्मण का गोरा रंग! तन पर ब्रह्मचार्यों के पीले वस्त्र धारण किये हुए! माथे पर चंदन के तिलक लगे हुए! चीते जैसी कमर! सिंहवत चाल! कंधे पर धनुष और पीठ से तरकश बंधे हुए! लम्बी लम्बी बाहें! गले में फूलों के हार पड़े हुए! तिरछी

चितवन ! रसीली आंखें ! सारे शरीर से राजपूती बांकपन बरसता हुआ ! नख से सिख तक सुन्दरता के सांचे में ढ़ले हुए ! माथे पर सूर्यवंश का तेज झलकता हुआ !

दो दो लड़कों ने दोंनों भाइयों के हाथ पकड़ रक्खे थे। जब यह लड़के अपने अपने घरों के समीप पहुँचते, प्रेम की वाणी में राजकुमारों से कहते—'राम ! यह मेरा घर है। क्या तुम मेरे घर न चलोगे ?"

भोले भाले सरल स्वभाव वाले राम हँसते और मुस्कराते हुये इनके घरों को चले जाते। घर के मां बाप, भाई बहिन इनको देखकर बलायें लेने लग जाते थे। इस प्रकार यह घूमते फिरते सबको आनन्द देते हुये नगर के चौक में पहुंचे। सड़कें लम्बी चौड़ी थीं। मकान ऊँचे और खुले हुए थे। बीच में कहीं कहीं फुव्वारे छूट रहे थे।

उनके घरों का छतों पर सेठों और महाजनों की स्त्रियाँ और लड़कियाँ बैठी हुई इनको देख रहीं थीं। यह नगर में अचानक पहुँचे थे। फिर भी बहुत सी स्त्रियों ने उन्हें देखकर ऊपर से फूल बरसाये और हाथ बाँध कर उन्होंने इनको नमस्कार किया। एक स्त्री ने हँसी दिल्लगी में ऊपर से कहा--"क्या तुम नर नारायण हो जो हमको आनन्द देने आए हो ?" दूसरी ने कहा—"यह चाहे नर नारायण न हों लेकिन आकाश वासी देवता हैं जो पृथ्वी पर उसकी लीला देखने आये हैं।"

स्त्रियों की बातें बड़ी लम्बी चौड़ी और रहस्य से भरी हुई होती हैं। एक बोली—"यह देवता नहीं हो सकते। यह देवताओं से भी बढ़कर है।" दूसरी ने कहा—"सच तो यह है कि विष्णु के चार हाथ, ब्रह्मा के चार मुख, शिव की तीन आंखें ! उनमें

क्या सुन्दरताई है ! विधाता ने जब लाखों रूप बना बना कर बिगाड़े होंगे तब ऐसी सुन्दर जोड़ी कहीं बनी होगी।" एक स्त्री ने ऊपर से मुस्करा कर कहा—"क्या कहीं तुम कामदेव के अवतार तो नहीं हो जो बालकों के रूप में फूलों के बाण से लोगों के हृदय को बेधने आये हो ?" राम मुस्कराये। देर तक ठहरना अनुचित था, आगे को बढ़े और स्त्री पुरुषों का चित्त अपने साथ ले गए। कैसे सम्भव था कि कोई इन्हें देखता और भूल जाता !

सारे शहर में इनकी चर्चा होने लगी। सौ मुँह और हजारों बातें ! सब अपनी अपनी कहते थे। किसी की नहीं सुनते थे। एक पुरुष ने कहा---"यह दशरथ के राजकुमार हैं, ब्रह्मचारी हैं।" दूसरा बोला—"हो न हो, यह धनुष यज्ञ देखने आये हैं।" तीसरे ने कहा—"अभी यह बालक हैं, शादी विवाह और स्वयम्बर की बातों को क्या समझते हैं ! विश्वामित्र ऋषि को निवेदन पत्र गया होगा। वह आए और अपने साथ उन्हें भी लाये होंगे।"

कूंए की जगत पर खड़ी हुई अच्छे घरों की स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। इन्हें देखकर अपना काम भूल गईं और एक टक होकर इनका रूप देखने लगीं। पहिले तो बेसुध हो गई थीं। जब सुधि बुधि आई, एक ने कहा—"यह सांवला बालक राम सीता का बर होने के योग्य है। क्या अच्छा हो कि जनक सीता के साथ इसका सम्बन्ध कर दें। ऐसा अच्छा वर संसार में कहां मिलेगा !" दूसरी बोली—"लड़का कोमल शरीर वाला है। इतना बलवान नहीं प्रतीत होता।" तीसरी ने मुँह खोला—"तब तो ब्याह हो चुका ! न शिव का धनुष टूटेगा न सीता ब्याही जायगी।" चौथी बोली--"सम्भव है कि राम

का रूप देखकर जनक अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा छोड़ दें।" पाँचवीं ने कहा—"यह कभी न होगा।" सबको देखते भालते और अपने विषय में सब की बातें सुनते हुये राम धनुष की यज्ञशाला में पहुँचे और उसके मंडप की रचना देखकर आश्चर्य करते हुये अपने निवास स्थान की ओर लौटने लगे। नगर के बालक उनके प्रेम में निमग्न हो रहे थे। बड़ी कठिनाई से समझा बुझा कर उन्हें उनके घर भेजा और आपने हँसते खेलते हुए गुरू के समीप आकर नमस्कार किया।

महारामायणम् पहिला आरम्भ खंड का
द्वितीय भाग समाप्त

महारामायणम्

प्रथम आरम्भ खंड

तृतीय भाग

पहिला समुल्लास

सीता का प्रेम

राम से विश्वामित्र ने कहा—"यहां से थोड़ी दूर पर राज वाटिका है। सवेरे का समय है। चले जाओ वहां से फूल तोड़ लाओ।"

लक्ष्मण तो नगर में जाने का बहाना ही ढूंढ़ रहे थे। गुरू आज्ञा सुन कर प्रसन्न हुये और दोनों भाई बाटिका में आये। जगह बड़ी शोभायमान, रमणीक और मनोहर थी। नाना प्रकार के वृक्ष फल फूलों से लदे हुये थे। बीच में एक तालाब था जिसमें कँवल के फूल लदे थे माली ने उस तालाव के फूल लगाने में बड़ी कारीगरी दिखाई थी। बीच में लाल रंग के कमल थे। इनके चौफेर स्वेत रंग के और फिर इन स्वेत रंग बालों के चोफेर नीले कमल और नीले कमलों के गिर्दागिर्द पीले रंग के कमल थे। सारा तालाव फूलों से भरा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई रंग बिरंगा गलीचा बिछा हुआ है। प्रबन्ध सब का गोलाकार था। लक्ष्मण उसे देखकर प्रसन्न हुये। बोले नीले कमल को बीच में, फिर श्वेत रंग को इसके चोफेर देना था। जब सुन्दरताई और अधिक होती। राम यह

सुन कर हँसे। माली पास खड़ा हुआ इनकी बातें सुन रहा था। सामने आकर खड़ा हुआ—"अब ऐसा ही किया जायगा और वह आपके आने का चिन्ह रहेगा। राम सांवले हैं आप स्वेत वर्ण के हैं। मैं और प्रकार के फूलों की ताक में हूं। यह फूल इस देश में कम मिलते हैं।"

राम ने कहा- 'भाई! हम गुरू की पूजा के लिवे फूल लेने आए हैं।"

माली—"आपकी बाटिका है। मैं सेवा के लिए तत्पर हूं। जिस २ प्रकार के फूल की आवश्यकता हो मैं तोड़ कर ला सकता हूं।"

राम "फूल तो हम अपने हाथ से तोड़ेंगे। गुरु की पूजा की सामग्री है। हां, तुम्हारी आज्ञा के बिना हम किसी फूल को हाथ नहीं लगा सकते।"

माली—"दक्षिण दिशा में चले जाइये। वहाँ दुर्गा देवी का मन्दिर है। उसके सामने फूलों की क्यारी में अनेक फूल खिले हुए हैं। आपका जितना जी चाहे तोड़ ले जाइए। मैं तालाब में जाकर आपके लिए एक टोकरे में कँवल के फूल भेंट करूँगा।"

राम लक्ष्मण दक्षिण की ओर गए, जहाँ दुर्गा जी का मन्दिर था और उसके समीप की क्यारी में फूल चुनने लगे। यह किसी बड़े वृक्ष की आड़ में थे। अप्सराओं का समूह मन्दिर के पीछे की ओर से दुर्गा जी की पूजा करने आ रहा था। उनके पांव के झाँझन और छागल का शब्द इनके कान में पड़ा। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कामदेव अपनी सेना को साथ लिये विजय करने के निमित्त नगाड़ा बजाता हुआ आ रहा हो। राम लक्ष्मण दोनों को कुछ आश्चर्य्य हुआ। गाछ की आढ़ से बाहर निकले और अप्सराओं के दल का आमना

सामना होगया। इन्होंने उन्हें और उन्होंने इन्हें देखा। यह तो पहिले ही से चकित हो रहे थे।

राम लक्ष्मण फिर वृक्ष की आड़ में चले गये और लड़कियाँ पूजा के निमित्त देवी के मंदिर में गईं। इधर राम ने लक्ष्मण से कहा—"होन न हो यह लड़कियां देवी पूजा के लिये आई हैं और इनमें जो सबसे अधिक सुन्दर कन्या है यह सीता ही है। स्वयम्वर होने वाला है, विवाह या स्वयंवर से पहले गौरी देवी के पूजने की रीति है। मैंने आज तक इस लड़की के समान कोई सुन्दरता की मूर्त्ति नहीं देखी। ब्रह्मा ने इसके बनाने में अपनी सारी कारीगरी लगादी है।"

उधर सीता ने अपनी सहेलियों से पूछा—"यह दो सांवले और गोरे सूर्य्य वृक्ष की छाया के बादलों की घटायें चीर कर कहाँ से निकल पड़े।" सखियों ने कहा—"वह राम लक्ष्मण हैं जो दशरथ नामक अयोध्या नरेश के राजकुमार हैं। अभी इनकी आयु थोड़ी है। धनुष यज्ञ और स्वयंवर को देखने के विचार से अपने गुरू के साथ तपस्वी ब्रह्मचारियों के भेष में आये हैं।"

सीता की आंखें बन्द हो गईं। राम की छवि की छाया उनमें खुब गई। पांव चलने में लड़खड़ाने लगे। सखियों ने जान लिया कि यह प्रेम ग्रसित हो गईं और मोहजाल में फंस गईं। हँसी दिल्लगी करने और खिल्ली उड़ाने लगीं। "आंखें खोलो।" स्वयम्बर के दिन राजकुमार को भरी दृष्टि से देख लेना। सुधि करो बेसुधि न बनो। राजकुमार फूल चुनने आये हैं। कहो तो बुला दूँ। फिर देखो।"

सीता लजा गई। यह उसे पकड़ कर मन्दिर में लेगईं। कहां को पूजा कहां का पाठ! सीता तो बावली सी बन गई।

आखें बन्द की बंद ! सखी सहेलियों ने देवी के सामने लाकर खड़ी कर दिया। दो देवियाँ आमने सामने आगईं। वह तो पत्थर की थी। यह मांस और चमड़े की मूर्ति थी। इनमें से कौन अधिक सुन्दर थी इसको कौन कह सकता है! एक जड़ और एक चैतन्य थी लेकिन इस समय तो दोनों एक जैसी जड़ रूप प्रतीत होने लगीं।

प्रेम बाण हृदय लगा, साले सकल शरीर।
धीरज भागा हृदय से, मन नहि धारे धीर॥
घायल की गति और है, औरन की गति और।
प्रेम हृदय में बस गया, लगा ठिकाने ठौर॥
दृष्टि मेल का खेल है, प्रेम प्रीति व्यौहार।
प्रेम के आते ही मिटा, मन का सोच विचार॥

सहेलियों ने सीता का हाथ पकड़ कर हिलाया। "चेत करो, पूजा करने आई हो या देवी के मंदिर में ब्रह्मदेव के ध्यान की समाधि लगाने आई हो? समाधि बैठकर लगाई जाती है। खड़े २ कोई योगी समाधि नहीं लगाता।"

बात कही गई, लेकिन सुनने वाला कौन था! वह तो जहां का तहां पहुंच गया था।

आंख बन्द मुख बंद है, कान में बंद लगाय।
सुनना कहना देखना, तीनों गये भुलाय॥
बाणी निर्वाणी बनी, आँख में पट्टी बाँध।
कान सुने अब शब्द क्या, सुरति भई विस्माध॥
प्रेम आया तब जाय नहिं, जाय न आया प्रेम।
प्रेम प्रकट मन में भया, सब गया संयम नेम॥

लड़कियां डरीं। सीता को हो क्या गया! यह कहीं बावली तो नहीं होगई! फिर हाथ पकड़ कर हिलाया। हार

थमाया कि देवी के गले में डाल दो। फूलों की माला को इसके हाथों ने स्वीकार नहीं किया। वह इसके हाथ से छूट कर इसी के पांव पर गिर पड़ी।

एक सखी बोली—"देवी की पूजा हो चुकी, सीता देवी के सामने आकर अपनी पूजा आप करने लगी।"

दूसरी सहेली—"लेकिन दुर्गा अप्रसन्न नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह मुस्करा रही है।"

तीसरी सहेली—"चल सीता! तेरी पूजा स्वीकार होगई। देवी तेरा मनोरथ सिद्धि करेंगी। अब चल! नहीं तो रानियां हमको बुरा भला कहेंगी, देर हो रही है।

सीता के मुँह से वाणी नहीं निकली। उसे शायद ज्ञान भी न रहा हो कि यह क्या कह रही है और क्या सुन रही है।

छवि प्रीतम हिय में बसी, मुख नहिं आवै बैन।
एक दशा मन की भई, क्या दिन और क्या वैन॥
मन बाणी चित खो गये, अपनी गति बिसराय।
प्रीतम प्रेमी से मिला, प्रेमी प्रेम समाय॥

धरे बाँधें की पूजा समाप्त हुई। सहेलियां धर पकड़ करके उसे मंदिर से बाहर लाईं और उसी दशा में रनवास को लेकर चली गईं। रानियों ने सीता की दशा देखी, बेसुध थी, पांव किसी के हाथ में, हाथ किसी के हाथ में! सहेलियों से पूछा—"इसे क्या हो गया! पहिले तो यह चुप थी फिर अधिक पूछा पेखी करने पर भांडा फोड़ दिया।"

माताओं ने अलग ले जाकर उसे एक जगह सुला दिया। इस रोग की औषधि नींद है। यह सो जायगी फिर अपने आपे में आयेगी।

दूसरा समुल्लास

सीता की उत्पत्ति

दूसरे दिन जनक विश्वामित्र से मिलने आये। ऋषि घर के भीतर थे। राम और लक्ष्मण बाहर खेल रहे थे। जनक को देखा। आये और नमस्कार किया। जनक ने ऋषि के दर्शन की इच्छा प्रकट की। राम भीतर गये। गुरु की आज्ञा पाकर मिथिला नरेश को उनके समीप ले गये। ऋषि ने दोनों भाइयों को अपने साथ बिठाकर राजा से पूछा—"आप का आगमन इस समय किस लिये हुआ?" जनक ने उत्तर दिया—"कल सीता का स्वयंवर है। मैंने प्रतिज्ञा की है कि जो मनुष्य शिवजी के धनुष को तोड़ेगा मैं अपनी प्यारी बेटी सीता उसे ब्याह दूँगा। देश [illegible] के राजे महाराजे, सेठ साहूकार, ब्राह्मण और शूद्र, [illegible]ल, यवन, आर्य और वसु सब आये हैं। कल सब के ब[illegible] पराक्रम की परीक्षा है।

से मरने लगी। नदी नालों का पानी सूख गया। मुझ से कहा गया राजा हल जोते तो पानी बरसे। मैंने अपनी प्रजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली, हल में बैल जोते और खेत जोतने गया। खेत जोता गया। उस खेत की भूमि में एक हांडी गढ़ी हुई थी। जब उसे हल की ठेस लगी, हाँडी फूट गई और उस हाँडी के भीतर एक रोती बिलखती लड़की निकली।

उसे देख कर मेरे मन में करुणा आई। मैंने उस बच्ची को अपनी गोद में उठा लिया। उसी समय आकाशमंडल में बादलों की काली काली घटायें उठीं और रिमझिम रिमझिम पानी बरसने लगा। मैं उस लड़की को गोद में लिये हुए भीगता हुआ महल में आया, कपड़े बदले। लड़की को रानी की गोद में देकर कहा कि यह मेरी लड़की है। वह हल की लकीर में मिली थी। मैंने उसका नाम सीता रक्खा। 'सीता' संस्कृत में 'हल की लकीर' को कहते हैं। मैं [illegible] के प्रेम बन्धन में बंधा हूं। लड़की बहुत प्यारी है। मी[illegible] बातें करती है। इसन अपने प्रेम के बन्धन में मु[illegible] रक्खा है। संस्कृत "सी

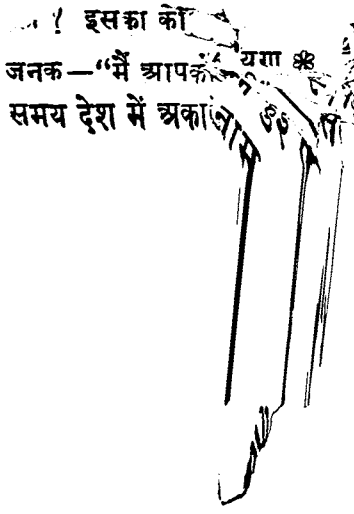

... ! इसका को ... है।

जनक—"मैं आपको ... यह कह...

एक समय देश में अका... झुलस गई।

स यह उत्पन्न हुई, इस लिए यह

इस इसी कारण से जोनकी

है। यह मेरी बेटी का दूसरा ... है।"

विश्वामित्र हंसे—"क्यों न हो तब ही तो तुम विदेह कहलाते हो। विदेह कहलाने के कारण का आज मुझे पता मिला।"

जान बूझ जड़ हो रहे, तजैं जगत की आस।
गति विदेह उसको मिलै, ऋद्धि सिद्धि सब पास॥
जानकार जो नर बना, वह क्या जाने भेद।
जान बूझ अनजान जो, उसके हाथ में वेद॥
हाँ और नहीं के मध्य में, यह रहस्य भर पूर।
अज्ञानी कुछ निकट है, नर ज्ञानी हैं दूर॥

जनक अपनी बारी पर मुस्कराये। राम लक्ष्मण को पता नहीं लगा कि दोनों के हँसने का कारण क्या है। फिर भी चुप चाप बैठे रहे क्योंकि मुँह खोलना असभ्यता समझा जाता है।

विश्वामित्र ने फिर पूछा—"यह तो मैं समझ गया। अब यह बताइये कि आपने शिव के धनुष तोड़ने की प्रतिज्ञा क्यों की?"

जनक—"ऐ सर्वज्ञ और त्रिकाल दर्शक ऋषि! मेरे वंश में कई पीढ़ियों से शिव का धनुष रक्खा हुआ है। वह बहुत भारी और कठोर है। जब से एक स्थान में रक्खा हुआ है, तब से वहां पड़ा है। किसी को साहस नहीं हुआ कि उसका स्थान बदले।"

एक दिन मैंने सीता से कहा—"बेटी बहुत दिनों से किसी ने न धनुष के घर में झाड़ू बुहारू किया, न किसी ने लीप पोत की। तू उस जगह को शुद्ध करदे। सीता उठी, स्वाभाविक रीति से धनुष को उठाया और फिर लीप पोत करके अपने स्थान

धारण बल देखकर प्रतिज्ञा [redacted] वह धनुष को उठा सकती है तो इसके पुरुष को अधिकतर बलवान होना चाहिये। मेरे प्रतिज्ञा करने का यह कारण है।"

ऋषि और जनक दोनों हँसे। राम ने उन्हें हँसते और मुस्कराते हुये देखकर जाना कि इस प्रसंग में कोई न कोई रहस्य है, लेकिन फिर भी चुप रहे। बोलना या प्रश्न करना उचित नहीं था। राजा जनक चला गया। राम मन ही में विचारते और समय की ताक में लगे रहे।

जब रात को ऋषि सोने लगे, दोनों भाई पाँव दबाने आये। प्रश्न का अच्छा समय मिल गया।

राम ने पूछा—"मैं अपनी ढिठाई की क्षमा मांगते हुए आपसे प्रश्न करता हूँ कि सीता की उत्पत्ति का रहस्य क्या है?"

विश्वामित्र—"तुम यह प्रश्न क्यों करते हो?"

राम—"आप दोनों मुस्करा रहे थे। मैंने समझा कि इस मुस्कराने में कोई न कोई भेद अवश्य है।"

विश्वामित्र—'सुनो राम! तुम अधिकारी और ब्रह्म के अवतार हो, तुम ऐसे प्रश्न कर सकते हो। साधारण मनुष्य का यह कर्तव्य नहीं है। मैं एक प्रकार गंगा की उत्पत्ति के प्रसंग में यह रहस्य तुमको बता चुका हूं और दीक्षित और शिक्षित भी कर चुका हूं। अब इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का यत्न करता हूं।"

"जब गंगा सुमेरु पर्वत पर गिरी उसकी धार ने पूरब पच्छिम या दांये बांये को पृथक कर दिया और वह पृथ्वी पर गिरी और वहां केन्द्र बनाकर ठहर गई। इस केन्द्र का नाम मूलाधार है। जनक मन है। जो जनता है या उत्पन्न करता है,

उसे जनक कहते हैं और उत्पन्न होने को भी संस्कृत में जनक कहते। जब इस मन की शक्ति क्षीण होने लगती है तो इसे हल जोतने या सोचने विचारने की आवश्यकता होती है। इससे दाँये बांये या पूरब पच्छिम की पृथक करने वाली लकीर प्रकट हो जाती है। इसी का नाम सीता है। यह देवी है शक्ति है और शुषम्ना नाड़ी है। यह मूलाधार पर कुण्डलाकार होकर जमी हुई बैठ जाती है। उस समय उसी का नाम कुण्डलनी शक्ति हो जाता है।

साधन करने से यह जान कर, मूलाधार से उठ कर, चार बिचले चक्करों को बेधती हुई आज्ञा चक्र (तीसरे तिल) पर सर्पाकार होकर खड़ी हो जाती है। आज्ञा चक्र दोनों भौंओं के बीच में है। यही शिव का धनुष है। यह धनुष के आकार का होता है। यह कुण्डलनी या लकीर वाली सीता इसे उठा देती है। यह रहस्य है।"

राम—"यह धनुष कैसे तोड़ा जाता है ?"

विश्वामित्र—"राम को यह साधन सिखा कर कहा—"यह धनुष केवल तुम तोड़ सकोगे। दूसरे का पराक्रम नहीं है, लेकिन जल्दी न करनी चाहिए।"

राम दीक्षित तो पहले ही से थे। गायत्री के सावित्री रहस्य का साधन करते चले आरहे थे। अब और भी इस क्रिया योग के विषय पर प्रकाश पड़ गया और मन में बहुत प्रसन्न हुए।

तीसरा समुल्लास

सिया स्वयंवर

कोई यह न समझे कि यह प्रेम इक तरफा डिगरी है, आकर्षण शक्ति दोनों ही ओर से होती है। प्रेमी और

प्रेम पात्र दोनों के हृदय एक दूसरे की ओर आकर्षित होकर झुके रहते हैं।

उधर सीता के हृदय को प्रेम बाण लगा, इधर उसी बाण ने उलट कर राम को भी घायल कर दिया। भेद इतना था कि राम धीर वीर गम्भीर थे, अपने आप को सँभाल रक्खा। सीता का हृदय बहुत कोमल था वह सँभल न सकी। राम को छोटे भाई और गुरू का ध्यान था। उन्होंने गुरू के इष्ट पद को सर्व प्रिय बना रखा था। सीता का इष्ट कुछ नहीं था। उसने राम को अपना इष्ट बना लिया।

राम गुरू के आज्ञाकारी शिष्य थे। तन, मन, धन सब गुरू पर अर्पण! सीता पर किसी के आज्ञाकारी होने का बोझ नहीं था। वह राम के देखते ही सौ जान से उन पर मोहित होगई। तन, मन, बुद्धि, साच, बिचार, समझ, बूझ सब कुछ बिना मांगे हुए राम के चरणों में न्यौछावर कर बैठी।

राम रात भर करवटें बदलते रहे, नींद नहीं आई। कैसे आती! वहाँ तो नींद की जगह किसी और ही शक्ति ने ले रक्खी थी। रात के समय आकाश में चन्द्रमा निकला, सीता का स्मरण आया। सीता चन्द्र मुखी है। उसके रूप में सुन्दरता का तेज है, लेकिन चन्द्रमा और सीता में भेद है। इसके मुँह पर काले धब्बे पड़े हुए हैं और सीता का मुख दोष रहित है। रात इसी बिसूर में बीत गई। यह कुकड़ का शब्द सुन कर उठे। लक्ष्मण को जगाया। नहा धोकर गुरू की पूजा की सामग्री का ध्यान आया। जनक का माली कमल फूल की डाली दे गया था। सोचने लगे सीता कमल के समान कोमल है। उसका गोरा रंग भी इसके श्वेत रंग से कुछ मिलता जुलता है, लेकिन यह कुछ और है और वह कुछ और है। इसमें गंध, रंग,

रूप सब कुछ सही लेकिन यह फूल है, सीता फूल नहीं है। वह इस प्रकार सोचते हुए गुरू के सन्निकट आये। नमस्कार किया। विश्वामित्र बोले—"राम! आज थोड़ी देर पीछे स्वयंवरशाला में चलना है। तैयार रहना। मैं भी पूजा पाठ से निवट लेता हूँ।"

राम ने कहा—"एवमस्तु, सत बचन!"

अभी ऋषि पूजा ही में बैठे हुए थे कि शतानंद जनक का दीवान उन्हें बुलाने आ गया। शतानंद को कुछ देर वहां बैठना पड़ा। ऋषि उठे, जटाजूट सँभाली, अँचला तन पर डाला और राजकुमारों के साथ धनुष मंडप में आये। मंडप मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ था। तिल रखने को जगह नहीं थी। धनुष बीच में एक चबूतरे पर रखा हुआ था। उसके चौ फेर राजकर्मचारी जनक के साथ बैठे हुए थे। आने जाने वालों के लिए बहुत जगह बीच में छूटी हुई थी। मंडप गोलाकार था। धनुष के चबूतरे के इर्द गिर्द बहुत सी गैलरियाँ बनी हुई थीं। उन पर राजे महाराजे अपने अपने पदानुसार विराजमान् थे। ऊपर और लोग बैठे हुए थे। इन सबके ऊपर गैलरी में रानियां और नगर की स्त्रियां बिठाई गई थीं। मंडप मणि, मुक्ता से सजाया गया था। रंग बिरंगे फूलों के बन्दनवार लटक रहे थे और मडप में बैठे हुए तेजस्वी वीर अपने तेज में ऐसे चमक रहे थे, जैसे कृष्ण पक्ष की अँधेरी रात में आकाश मंडल के तारे जगजगाते हैं।

विश्वामित्र सब से पीछे पहुंचे थे। इनके बैठने के लिए बीच की गैलरी में तीन कुर्सियाँ खाली रक्खी हुई थीं। शतानंद ने उन्हें लाकर उन पर बैठाया। राम का आगमन उस अवसर पर अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। सारे राजे रात के

तारों के समान दमक रहे थे। इन दोनों राजकुमारों के पहुंचते ही उनके चहरों का रंग ऐसे उड़ गया, जैसे सूर्य के निकलने पर प्रभात के तारे तेज हीन हो जाते हैं। यह राजकुमार सूर्य वंश से थे।

मंडप में एक तरह का शोर सा मच गया। सब इनके लिए उठ खड़े हुए और राजकर्मचारियों ने बड़ी कठिनाई से उन्हें इसी अपनी जगह शान्ति से बैठाया।

जब विश्वामित्र और राम लक्ष्मण मचान (गेलरी) की कुर्सियों पर सुशोभित हुए, जनक की आज्ञा पाकर एक भाट (बंदीगण) उठा और अपने दाहिने हाथ को ऊँचा करके ऊँचे स्वर से सबको सुना कर कहा—"राजे, महाराजे, महाशयगण ! आप पर विदित हो कि आज का दिन सीता राजकुमारी के स्वयम्वर के लिए नियत हुआ है, जो सबसे ऊँचे मचान पर स्त्रियों के साथ बैठी हुई है। बीच के चबूतरे पर यह धनुष रक्खा हुआ है।"

"जो मनुष्य इसे तोड़ देगा, सीता उसे ब्याह दी जायगी। यह हमारे राजा की प्रतिज्ञा है। आपको आज ईश्वर ने सुकुमारी प्राप्त करने का अवसर दिया है। अपने अपने बल, पौरुष, पराक्रम और सौभाग्य की परीक्षा करिये कराइये। सीता सी सुन्दर कन्या आज इस जगत् में कोई नहीं है।"

भाट ने उँगली सीता की ओर उठाई। सबकी दृष्टि सीता पर पड़ी। वह मचान पर पूर्णिमा के चांद के समान ऊँची बैठी हुई शोभायमान हो रही थी। सब उसे देखकर चकित हो गये।

बारी बारी पर सारे शूरवीर, योधा सूरमा उठे। धनुष के उठाने में सारे शरीर का बल लगा दिया। धनुष इतना भारी

था कि उसने जगह नहीं छोड़ी और टस से मस नहीं किया यह लज्जित होकर अपनी अपनी जगहों पर आकर बैठ रहे, सिरों को झुका लिया और श्री हत हो गये।

राजे महाराजे उठे, सब आये, बल लगाया। धनुष को टलना और खिसकना नहीं था। वह न टला और न खिसका।

एक लङ्कापति रावण रह गया था। साथियों ने उससे कहा—"तुम जाकर हाथ लगाओ।" रावण ने दूर से हाथ जोड़कर धनुष को नमस्कार किया और कहा—"यह गुरू की कमान है। शिवजी मेरे इष्ट गुरू हैं। मैं इसका अपमान और अनादर नहीं कर सकता।" जनक ने रावण की बात सुन ली। अब कोई पुरुष उस मंडप में ऐसा दिखाई नहीं पड़ा, जिसे धनुष के पास जाने का साहस होता। जनक को बड़ा शोक हुआ। थोड़ी देर तक राजा चुपचाप बैठा रहा। फिर बैठा न गया। चबूतरे के पास खड़े होकर उसने हृदय बेधक शब्दों में सब को सुना कर कहा—"महोदयगण! पृथ्वी से रणवीर, धीर गम्भीर योद्धा उठ गये! सूरमाओं का नाश हो गया! आप लोग यहाँ सुकीर्ति और यश प्राप्त करने आये थे। आप सब के सब भाग्य-हीन हैं। सीता के ब्याहने का साहस किसी में नहीं है। धनुष इतना बोझल हो गया कि तोड़ना तो अलग रहा, कोई उसे हिला तक नहीं सका। विधाता ने शायद सीता के लिए वर नहीं रचा। मैं क्या करूँ! बेबस हूँ। प्रतिज्ञा कर बैठा। न यह धनुष टूटेगा और न सीता ब्याही जायेगी। मुझे बड़ा शोक है! आप मेरे पाहुने हो। मैं आये हुए महमान और अतिथियों का कोई अपमान नहीं करता। मैं अपमान के बचन नहीं बोलता। साधारण रीति से कहता हूँ कि पृथ्वी मंडल में अब बीर नहीं रहे। जाइये अपने २ घरों को चले जाइये। अब जनकपुर में

रह कर क्या कीजियेगा।

यह कह कर जनक बैठ गया। ऊपर के मचान पर बैठी हुई स्त्रियों ने हाय हाय करना और रोना झींकना मचा दिया। या तो यज्ञशाला पहिले आनन्दभूमि बनी हुई थी या अब वह स्यापे की जगह हो गई। इस समय उस मण्डल में करुणा रस का जल अधिकता के साथ बरस गया। आये गये सब को दुःख हुआ। जनक की रानी सीता को गोद से चिपटा कर रो पड़ी। हाय बेटी! जगत् में तेरे योग्य कोई वर नहीं है और रानी को रोना देखकर सब स्त्रियों ने मिलकर कुहराम मचा दिया!

चौथा समुल्लास

लक्ष्मण का उत्साह जनक कथन

इधर स्त्रियाँ रो रही हैं उधर पुरुष शोकातुर हैं। शान्ति कहीं है तो केवल राम और विश्वामित्र में है। यह दोनों के दोनों उदासीन हैं। न हर्ष है न शोक है। चुपचाप बैठे हुए जगत की लीला देखा किये।

लेकिन जनक की बातों को सुन कर लक्ष्मण के हृदय में क्रोध की अग्नि प्रचण्ड हो गई। अपने आप को संभाल न सके। या तो वही लक्ष्मण थे जो राम और विश्वामित्र की आज्ञा बिना मुँह नहीं खोलते थे या अब उनका ध्यान न रखते हुये इक बारगी मचान पर उठ खड़े हुये और हाथ उठा कर सबको सुना कर कहा—"सद्गणो! साक्षी रहना। जनक ने घर बुला कर हम सब का बड़ा अपमान किया है। सभा में एक रघुवंशी बालक भी बैठा हो तो किसी को साहस

नहीं होता कि यह कहे कि पृथ्वा वीरो से खाली हो गई और जनक जानते हैं कि यहां रघुकुल तिलक रामचन्द्र जी विराजमान हैं। जनक ने महा अनुचित बाणी कही है। बिना समझे बूझे हुए राम के होते हुए ऐसी बात मुँह से निकाल दी।"

यह कह कर लक्ष्मण क्रोधान्ध होते हुए राम के चरणों में झुके और पांव को छू कर कहने लगे—"नाथ! आज्ञा दीजिये। अभी दम के दम में गेंद के समान इस सारे ब्रह्मांड को उठा लूँ और पृथ्वी को फूल [गरजुआ-वर्षाती कीड़ा] की तरह तोड़ फोड़ करदूँ। जैसे मिट्टी के कच्चे घड़े के तोड़ने में कुछ परिश्रम नहीं करना पडता, वैसे ही इस ब्रह्मांड को मैं कुछ नही समझता। और यह ब्रह्मांड[1] क्या है! यह निराधार, कूटस्थ अधिष्ठान रूप सुमेरु पर्वत[2] के आधार पर स्थिर है। मैं इस सुमेरु पर्वत को उठा सकता हूँ, हिला सकता हूं और उसकी जड़ को उखेड़ करके फेंक सकता हूं। आपके चरणों के प्रताप में बड़ा बल है। यह सड़ा हुआ जुग जुगान्तर का पड़ा हुआ धनुष क्या है! जिसके तोडने में मुझे संकोच हो। मैं कमल की डण्डी के समान उठा कर इसे सात योजन तक दूर फेंक सकता हूं। कहिये अभी यह खेल दिखा दूँ!"

नहीं हम छोड़ते प्रण को, जो अपने प्रण पै आते हैं।
इसी से वार जाते हैं, इसी से पार जाते हैं॥

नोट—नं० १-२- रामायण में यह शब्द थों ही नहीं आये। इन सब का अर्थ है जिसका निर्णय इस ग्रन्थ में जगह जगह पर कर दिया गया है। रामायण योग विद्या की पुस्तक है, जिसकी समझ सिद्ध साधक को आ सकती है।

कहां अभिमान है हममें, स्वाभाविक गुण हमारा यह।
नहीं देते हैं धोका, और नहीं धोके में आते हैं॥
अड़े जिस बात पर पूरा किया, साहस व धीरज से।
समुन्दर फाड़ते हैं शैल से, नदियाँ बहाते हैं॥

लक्ष्मण की बात सुनकर सुनने वालों के हृदय कांप उठे, सब के मन भय भीत होगये, कलेजे दहल गये और सन्नाटा छा गया।

विश्वामित्र चित्त में प्रसन्न हुए। पास बुलाया, सर पर हाथ फेर कर कहा कि बैठ जाओ और वह बैठ गये। जनक को ढाढ़स बँधी। स्त्रियां रोना धोना भूल गईं। सब एक टक होकर इस छोटे राजकुमार के बांकपन को देखने लगीं। अहा! क्या अच्छा रूप रंग है! इसके अंग अंग से राजपूती आन झलकती है! आंखें क्या हैं? लाल रंग के कमल हैं, जिनमें लाल और स्वेत वर्ण के डोरे दौड़े हुये हैं। सीता को पहिले बड़ा दुख था। वह निराश तो नहीं थी, क्योंकि प्रेमी जन कभी निराश नहीं होते। लक्ष्मण की बातों ने उसके मन के साथ वह बर्ताव किया जो बादल का पानी धान के सूखे खेतों के साथ करता है।

हाँ! रानियों की समझ में लक्ष्मण की बात नहीं आई।

इस दृश्य के पश्चात् विश्वामित्र ने राम से कहा—"वीर उठो! तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया है। तुम विधि जानते हो। शिव के धनुष को तोड़ दो। जनक का दुख मिटे सीता का संकट कटे और उसकी सहमी और डरी हुई माताओं को निश्चय हो जाये कि पृथ्वी पर रघुवंशियों में पराक्रमी, योधा वीर उपस्थित हैं!"

राम गुरू की आज्ञा पाकर उठे। सिंह जैसी चाल! सहज साधारण वृत्ति! न घमण्ड न अहंकार

राजपूती रूप में, अद्भुत निराली शान थी।
शान में सुख दायनी, आनन्ददायक आन थी।

मचान पर खड़े हुए। देखने वालों ने उनके एक रूप में सहस्रों लीलायें देखी। सहस्रार का तेज आंखों के सामने आ गया।

एक थे इस रूप में कितने ही रूप और नाम थे।
योगियों के इष्ट पद, मुनियों के वह विश्राम थे॥
नारियों की दृष्टि में, जचने लगे लगे वह काम देव।
शोभा प्रकट रूप से थी, राम शोभा धाम थे॥

खड़े होते ही सबकी आंख उन पर पड़ीं। विश्वामित्र ने खुली दृष्टि से उस सावित्री का दर्शन पाया जिसका वह ध्यान लगाया करते थे।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यम्

योगियों को वह सिद्धि शक्ति के आकार जंचे। ज्ञानियों ने विराट सरूप का जगमगाता हुआ दृश्य देखा।

शूरवीर क्षत्रियों ने उन्हें वीर रस का अवतार निश्चय किया। जो कुटिल, कायर, खल, कामी थे, उन्होंने राम को काल और महाकाल समझा और डर गये।

जनक पहिले चाहे विदेह न रहे हों, अब देखकर देह का सम्पूर्ण अध्यास भूल गये और वह उन्हें अपना बालक मान बैठे। जनक को अभिमान था कि वह मोह में आसक्त नहीं हैं। अब आंखें खुलीं। राम के प्रेम ने उन्हें मोह ग्रसित बना दिया। रानियाँ उन्हें कोमल शरीर बाला नन्हा बालक जान बैठीं और आपस में अनाप शनाप बातें कहने लगीं। इनकी जुबान बड़ी लम्बी चौड़ी सौ-सौ हाथ की कैंची होती है, जो फ़र फ़र काट करती रहती है और थकने में नहीं आती।

जनक की रानी अपने को बड़ी सयानी समझती थी। कहने लगी—"इस सभा में कोई समझदार मनुष्य नहीं है। कहां यह कोमल हाथ पांव वाला बालक और कहाँ शिव का कठोर धनुष! भला यह उसे कैसे तोड़ सकेगा! रावण ने उसे छूआ तक नहीं! आज इसकी वीरता का संसार में डंका बज रहा है! और यह बालक धनुष तोड़ने जारहा है! कोई जाये राजा को समझाये। सीता को यों ही इसके साथ ब्याह दिया जाये और यह कठिन काम इसे न सौंपा जाये। यह कुछ न कर सकेगा!

एक समझदार सखी पास बैठी हुई थी। बोली—"रानी! चिन्ता न करो। सूर्य्य देखने में छोटा है, उसके उदय होते ही संसार का अधकार भाग जाता है।"

दूसरी सखी—"हां! सच तो है छोटा आंकुस बड़े से बड़े हाथी को बस में कर लेता है।"

तीसरी—"एकाक्षरी मन्त्र क्या होता है? वह एक अक्षर ही तो है। कितनी जल्दी उससे सिद्धि शक्ति प्राप्त होती है!"

चौथी—"राम बचपन ही से तपस्वी और योगी हैं। मां बाप को छोड़ कर गुरू के साथ रहते हैं। यह जो कुछ कर दिखायें सब थोड़ा है।"

पांचवीं—"मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होने लगा है।"

रानी—"चलो परे हटो। यह चौंचलेपन की बातें मुझे भली नहीं लगतीं। मैं तो देख रही हूं कि सबकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है। ईश्वर सहायक हो!"

छठी सखी—"तो अब धैर्य्य धरो! देखो क्या होता है! सबकी लाज ईश्वर के हाथ में है।"

इधर यह बाते हो रही थीं उधर लक्ष्मण बेचैन हो रहे थे।

वह चाहते थे राम झटपट धनुष को तोड़ कर निवास स्थान पर चलें। इस छोटे से काम के लिए इतना समय क्यों दिया जा रहा है!

पाँचवां सम्मुल्लास

राम का शिव धनुष तोड़ना

आकाश का सूर्य्य पूर्व में निकला और पश्चिम की ओर चला। कमल के फूल खिले, कुमुदनी की पंखड़ियाँ सिकुड़ गईं। पक्षी पखेरू चहचहा उठे। उल्लू वृक्षों के खोखलों में जा छुपे। राम मचान से उतर कर धीरे धीरे धनुष के चबूतरे के पास पहुँचे। विश्वामित्र ने अपने मन में प्रार्थना की—"सीता का दुःख, जनक का क्लेश, रानियों के असमंजस की भावना, नगर वालों की निराशता सब की सब शिव के धनुष पर चढ़ जाओ। राम धनुष को तोड़ना ही चाहते हैं। तुम सहज में ही पार हो जाओगे।"

राम ने धनुष को उठाया। उठाते हुये सबने देखा। तड़ाके का शब्द हुआ और धनुष के तीन टुकड़े पृथ्वी पर आ पड़े। उनको टूटते और गिरते हुए किसी ने भी नहीं देखा।

उठ चली कुंडलनी मूलाधार से।
पहुंची भ्रू के मध्य बारापार से॥
बेधी कुंडलनी ने फिर शिव की कमान।
तीसरे तिल में लगाया अपना ध्यान॥
ध्यान में अनुमान था प्रमाण था।
ध्यान ही में सत गुरू का ज्ञान था॥

मण्डप आनन्द से भर गया। स्त्रियाँ सुहाने मंगल राग

गाने लगीं। सहेलियों ने सीता को उठाया। उसके हाथ में जयमाल देकर ऊपर मचान से नीचे चबूतरे के पास उतार लाईं। सीता ने राम को देखा, राम ने सीता को देखा। सीता की आंखें फिर बन्द होने लगीं। सहेलियों ने हँसकर कहा।

आंख न मूदो, कान न रूंधो,
काया कष्ट न धारो।
खुली आंख से हम हम देखो,
सुन्दर रूप निहारो।

सीता लजाई। सहेलियों ने कान में झुक कर कहा—"राम के गले में जयमाला डाल दो। दुर्गादेवी के मन्दिर के समान अपने पांव में जयमाला न डालना। यह राम के गले का भूषण है। आज से तुम जीती गईं। राम ने तुमको जीत लिया। अपनी नहीं रहीं। राम की हो गईं। अब सर्वस्व राम का होगया।"

रहस्य की बातों को सुनकर सीता लज्जित तो हो गई, फिर भी मन को कड़ा करके हाथ से जयमाला को उठाया। यह छोटी थीं और राम ऊँचे डील डौल वाले थे। हाथ गले तक नहीं पहुँच सकता था। राम ने सिर झुकाया। सीता ने गले में जयमाल डाल दी। किसके सिर को झुकना चाहिये था और किसका सर झुका! किसको बन्धन में आना चाहिये था और कौन बन्धन में आकर बांधा गया! सोचो समझो और विचार करो!

सहेलियों ने फिर कान में झुक कर कहा—" आँख भर कर एक बार देख लो और माताओं के पास चलो।" और सीता ने ऐसा ही किया।

पृथ्वी ब्याही गई आकाश से।
फांसा उसने अपने माया फाँस से॥
कैसा बन्धन कहने की सब बात है।
प्रेम भक्ति का यह दाव और घात है॥

अभी सीता ने माताओं के पास जाने के लिए पीठ नहीं फेरी थी कि मंडप में शोर मच गया। धनुष तोड़ने से क्या हुआ! दोनों राजकुमारों को बाँध लो और उनसे सीता को छीन लो। यह शोर बढ़ता ही गया। सहेलियों ने झटपट सीता को ले जाकर माता की गोद में डाल दिया। उसने उसे छाती से लगा लिया। स्त्रियाँ डरीं कि कहीं लड़ाई झगड़ा न हो जाये। राम उदासीन थे। लक्ष्मण गुरू की आज्ञा चाहते थे कि अपने धनुष बाण सँभालें और इन कायरों का काम समाप्त करें। यह तो नहीं हुआ। हां, भीड़ आप ही आप छटने लगी।

यह क्या हुआ! कारण यह था कि जब मंडप में राजकुमारों को बाधने का और सीता को छीन लेने का शोर मच रहा था, उसी समय लोगों को परशुराम के आने का समाचार मिला। यह वह क्षत्रियों का नाश करने वाले योद्धा, सूरमा थे, जिसने सहस्रबाहु की हजारों भुजाओं को काट कर रण भूमि की वेदी पर आहुतियाँ दी थीं। इक्कीस बार पृथ्वी के क्षत्रियों को निर्जीव किया था। राजे महाराजे सब इनके नाम से डरते थे। कोई सामने नहीं आता था। कायर राजपूतों के मंडप छोड़ कर भाग जाने का यह कारण हुआ।

छटवाँ समुल्लास

परशुराम और लक्ष्मण का सम्वाद

मंडप में कुछ देर के लिए शाँन्ति आ गई। सब चुपचाप हो गये। सूई पृथ्वी पर गिरती तो उसके गिरने का शब्द सुनाई दे जाता। क्यों? क्योंकि परशुराम जी का आगमन हुआ।

गोरा भभूका रंग ! कंधे से कमान और तरकस बाँधे हुए ! हाथ में चमकता हुआ परसा ! ब्रह्मचर्य का हथियार। क्रोध के रूप। आंख से अंगारा बरसता हुआ ! जिसको सीधी दृष्टि से देखते थे वह समझता था मेरी मृत्यु आ गई। बड़ की जटाओं जैसे बाल ! बहुत मोटा बटा हुआ जनेऊ दाहिने कंधे पर साँप जैसा लिपटा हुआ ! मृग चर्म की आसनी पीठ से बँधी हुई ! त्रिपुंड का तिलक माँथे पर लगा हुआ !

उनके आते ही सारे राजा पावों पर झुके और अपने २ बाप का नाम बताया। यह किसी को आशीर्वाद तक नहीं देते थे। हां ! सिर हिलता रहता था।

जनक मिले। सीता जानकी मिली। शतानंद आये। इनके पश्चात् विश्वामित्र अपने ब्रह्मचार्यों के साथ-आकर मिले। राम लक्ष्मण की जोड़ी विचित्र और विलक्षण थी ! सर हिला कर विश्वामित्र से पूछा—"यह कौन हैं ?" ऋषि ने उत्तर दिया—"दशरथ पुत्र राम लक्ष्मण हैं ?" फिर सिर हिला कर कहा—"जोड़ी है। सुन्दर बालक हैं और बस।"

फिर जनक की ओर आंख फेरीं। "आज यह भीड़ भाड़ कैसी है ?"

जनक ने उत्तर दिया—"सीता का स्वयंवर था। सब इसी उत्सव में आये थे।" "हां हां" कहते थे और सिर हिलता जाता था।

फिर कर देखा, शिव के धनुष के तीन टुकड़े पृथ्वी पर पड़े हुए दिखाई दिये। हाय ! यह क्या हुआ ? किसन इसे तोड़ा है ? अलग हो जाय नहीं तो अभी सारे राजाओं के सर काट कर धूल में मिला दूँगा।"

सब की वाणी गूंगी हो गई। सब की घिग्घी बंद ! मुँह

खोलने का साहस कैसे हो ! उन्होंने परसे को हाथ में लिया। राम सामने आये। "धनुष का तोड़ने वाला आप का दास है।"

परशुराम—"नहीं समझा ! दास का यह कर्त्तव्य नहीं हो सकता। यह तो शत्रु का काम है। ऐ राम ! जिसने शिव के धनुष को तोड़ा है वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है। अलग हो जाये, नहीं तो यह सबके सब राजे मारे जायेंगे। मूढ़ और जड़ जनक बोलता क्यों नहीं ? किसने यह अनुचित काम किया है ?"

जनक को भय था। रानियाँ अलग सहमी हुई थीं। रानी कहती थीं विधाता ने बना बनाया खेल बिगाड़ दिया। सीता जानती थी कि परशुराम क्षत्री कुल द्रोही हैं। केले के पत्ते वायु के झौंके से जैसे हिलते हैं इसका शरीर थर-थर कांपने लगा। राम ने सीता की दशा देखी। परशुराम के सन्मुख आये। "मैं कह चुका हूं कि यह भूल चूक सेवक से हुई है।"

परशुराम—"अच्छा सेवक है और फिर परसे को हाथसे उठाया।" लक्ष्मण इनका रूप और स्वभाव देख कर हँस पड़े। "हमने खेल खेल में कितने धनुष तोड़ दिए। आपने कभी कोप नहीं किया। इस सड़े गले धनुष पर क्यों इतनी ममता है ?"

परशुराम क्रोध से प्रचंड आग भभूका बन गये। "मूर्ख राजकुमार ! सम्भल कर बात नहीं करता। इस धनुष की समता और धनुषों के साथ कैसी। यह शिव भगवान का धनुष है।"

लक्ष्मण फिर मुस्कराये—"आप क्यों इतने क्रोधित हैं ? देखिये तनमन की दशा बिगड़ी जाती है। जो होगया सो हो गया। मेरी समझ में सारे धनुष एक जैसे हैं।"

"सड़ा गला दीमक का खाया हुआ धनुष पड़ा हुआ था। राम को नये धनुष का धोका हुआ। हाथ लगाया और वह नाक की रेंट के समान भद से नाचे गिरा और टुकड़े २ होगया। आपका क्रोध व्यर्थ है। इस में राम का क्या अपराध था?"

परशुराम ने परसा को उठाया—"बालक समझ कर छोड़े देता हूं। तू शायद मेरे स्वभाव को नहीं जानता। तू मुझे साधारण साधु समझ रहा है। सुन! मैं अखँड बाल ब्रह्मचारी हूँ। क्रोध अग्नि की दहकती हुई मूर्ति! कितने बार मैंने क्षत्रियों के कुल का नाश किया और ब्राह्मणों को राजा बनाया। यह वह परसा है जिसने सहस्रबाहु के हजारों हाथों को काट डाला। अधिक क्रोध न दिला। जा परे हट! नहीं तो तेरे मां बाप तेरा स्यापा करने लगेंगे। उन्हें अपनी अकाल मृत्यु का शोक न दे। जब मैं इस कुल्हाड़े को भांजने लगता हूं उसके शब्द से स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं।"

लक्ष्मण फिर हँसे—"अहा! आप शूरवीर भी हैं और आपकी वीरताई स्त्रियों के गर्भ गिराने में है। वाह! वाह! वाहरे वीर पुरुष! क्षत्रियों का तो स्त्री जाति पर कभी हाथ नहीं उठता। मुझे कुल्हाड़ा दिखा कर तुम क्या डराते हो! मैं पहाड़ हूं। तुम्हारे जैसे स्त्रियों के गर्भ गिराने वालों की फूंक से नहीं उड़ सकता। न मैं छोटा कोमल फूल हूं जो तुम्हारे उँगली दिखाने से मुरझा जाऊँगा। तुम मुझे गालियां देते हो। गाय और ब्राह्मण की मेरे कुल में रक्षा होती है। गाय और ब्राह्मण को हम समान समझते हैं। तुम वीर रूप में मेरे सामने आये। मैं क्षत्री हूँ। जाति के अभिमान से दो चार साधारण बातें मुँह से निकल गईं। ब्राह्मण हो, मुनि हो, जनेऊ धारी हो। मेरी बातों को क्षमा करो और धनुष बाण और परसे को आज से

उतार कर रख दो। ये आप के लिये शोभायमान नहीं है।" यह कह कर लक्ष्मण विश्वामित्र के पास चले गये।

परशुराम ने विश्वामित्र की ओर दृष्टि की। कौशिक! यह बालक महा मति मंद है। चंचल! कटु वचन बोलने वाला! मैं तुमसे कहे देता हूं कि यह एक क्षण में काल का ग्रास हो जायगा। मेरे भुजबल प्रताप की कथा सुना कर इसे रोको, डराओ, समझाओ।

लक्ष्मण फिर हँसे—"आप जब अपनी बीती आप सुना रहे हो, सुना सकते हो, तो औरों की सहायता क्यों चाहते हो? क्या यही वीरपन का लक्षण है? बार बार अपने मुँह से अपनी बड़ाई करते हो और मुझे गालियां देते जा रहे हो। क्या कोई शूरवीर कभी ऐसा करता है? अब तक किसी बाँके वीर से पाला नहीं पड़ा। ब्राह्मण और देवता घर ही के बली होते हैं। आमने सामने आने से कतराते रहते हैं। जाओ अपना काम करो।"

सब के मुँह से निकला-"अब बहुत अनुचित हो रहा है।"

राम ने आँखों से लक्ष्मण को डांटा। विश्वामित्र ने भी आंखें दिखाईं। वह गुरू के पीछे आड़ में आ रहे।

क्रोध की दहकती हुई आग प्रचंड होती चली जा रही थी। राम अपनी शीतल बाणी के जल से बुझाने के लिये परशुराम जी के सामने आये। "नाथ! क्षमा कीजिये! साधु और मां-बाप दूध पीने वाले बच्चे की बातों पर नहीं जाते। बच्चे अन-समझ होते हैं।"

ठंडी बातों का प्रभाव तो पड़ा, लेकिन लक्ष्मण गुरू के पीछे खड़े हुए मुस्करा रहे थे। मन को सम्भालते हुए परशुराम ने कहा—"राम! यह तेरा भाई महा पापी है। देखने में तो सुन्दर है किन्तु विष की गाँठ है। यह सोने का घड़ा है जिस में

विष भरा हुआ है। तुझ में और इसमें बड़ा अंतर है।"

लक्ष्मण ने हँस कर उत्तर दिया—"पाप की जड़ तो क्रोध में रहती है। देखिये! आप में क्रोध है या मुझ में है? आप बड़े ज्ञानी ध्यानी शूरवीर गम्भीर सब कुछ हैं। अब तो सेवक समझ कर मुझ पर दया कीजिए। क्रोध करने से टूटा हुआ धनुष न जुड़ेगा। किसी कारीगर को बुलाइये, वह अभी जोड़ देगा। खड़े खड़े देर होगई, पांव दुख गये होंगे। बैठिये, चित्त में शांति आये।"

जनक को भय था, रानियां काँप रही थी। यह चाहते थे कि वह आंखों की ओट हो जांय।

परशुराम लक्ष्मण की अभी बाणी सुन सुन कर क्रोधित हो रहे थे। क्रोधी शरीर निर्बल हो जाता है। बहुत सम्भले। राम से कहने लगे—"तू उत्तम है। तेरा भाई दुष्ट है। वह कमल के फूल के भीतर छिपा हुआ काला नाग है। इसे केवल तुम्हारे शील स्वभाव को देख कर छोड़ रहा हूँ।"

परशुराम ने परसा ताना। हाहाकार मच गया।

लक्ष्मण बोले—"ऐसा प्रतीत होता है कि काल तुम्हारे ही हाथ में है और तुम्हारा ही आज्ञाकारी है। तुम अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनते हो। शत्रू सामने खड़ा है। बातें क्या सुनाना! गालियों का मेघ बरस चुका। अब जी में आये परसे की भयानक धुनि भी सुना दीजिये और बिजली की गर्ज और चमक दमक का तमाशा भी दिखा दीजिये।"

परशुराम क्रोधातुर होकर तड़प उठे। परसा भाँजने लगे। "अब कोई मुझे दोष न दे। मैंने बहुत इस मूढ़ की असह्य वाणी का सहन किया। बालक समझ कर छोड़ता रहा हूं"।

विश्वामित्र ने कहा—'लड़के तो लड़के ही होते हैं। बालहट

को आप जानते हैं। जाने दीजिये इसके अपराध को क्षमा कीजिये"।

परशुराम—"सुनो विश्वामित्र! में स्वभाव का क्रोधी हूँ। इस समय मेरे सामने गुरू द्रोही खड़ा हुआ उलटी सीधी बातें सुना रहा है। चाहिये तो यह था कि इसका गला अभी काट देता और गुरू के ऋण से उत्तीर्ण होता। अच्छा! तुम्हारे शील स्वभाव को देखकर इसे छोड़ देता हूं।"

विश्वामित्र जी अपने मन में हँसे—"सावन भादों के अन्धे को जब देखो हरियाली की सूझती है। बसन्त ऋतु के अन्धे की आंख में सरसों फूली रहती हैं। इतनी बातें हो चुकीं किन्तु अब भी इनकी आंखें नहीं खुलीं।"

लक्ष्मण फिर मुस्कराये—"मुनिनाथ! आपकी कीर्त्ति को कौन नहीं जानता! वह संसार में फैली हुई है। मां बाप का ऋण तो आपने उतार दिया। गुरू का ऋण चुकाना रह गया है। सूद का रुपया बहुत बढ़ गया, वह मेरे माथे उतरने वाला है। जल्दी करो किसी महाजन को बुलाओ। मैं थैली खोल कर उसे चुका दूँ।"

परशुराम की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो गई। परसे को हाथ में उठाया। सभा में हाहाकार मच गया।

लक्ष्मण का त्यौर भी बदल गया। "ब्राह्मण समझ कर तुमको छोड़ रहा हूँ। बार बार मुझे क्या कुल्हाड़ी दिखाते हो।" लक्ष्मण जी कुछ और कहने वाले ही थे। इनकी दृष्टि राम और विश्वामित्र की ओर गई। उनके हृदय का भाव भांप गये और फिर गुरू के पीछे छुप रहे।

राम ने कहा—"साधो! अब वह उपाय बताइये जिससे

आपका क्रोध मिट जाये। आप बच्चे के बचपने पर न जाइय। वह निरअपराधी है। आपका अपराधी मैं हूँ। उसने धनुष को हाथ नहीं लगाया। मैंने उसे तोड़ा है। मुझको अपना दास समझिये और क्रोध को दूर कीजिये।"

परशुराम—"क्रोध जाय तो कैसे जाय! अब भी देखो तुम्हारा भाई कैसी क्रूर दृष्टि से मुझे देख रहा है। अगर इस का सर इस कुल्हाड़ी से नहीं उतारा तो मेरे कोप का परिणाम क्या हुआ! हाथ उठता नहीं और छाती जल रही है। यह परसा आज मेरा आप शत्रु बन रहा है। पासा उलटा पड़ा हुआ है। मुझमें दया कैसी! मैं तो दया के पीछे लाठी लिये फिरता हूं। क्या करूँ! बेबस हो रहा हूँ। विधाता मेरे लिये बाम (टेढ़ा) हो गया।"

लक्ष्मण से न रहा गया। फिर हँस पड़े। "आप जब बातें करते हैं मुँह से फूल झड़ते हैं। जब दया करने से आपकी छाती जलती है, तो क्रोध के समय ईश्वर जाने आपकी कैसी दशा होती होगी!"

जनक ने देखा कि लक्ष्मण काल के मुंह में चले जारहे हैं, घबरा उठे।

परशुराम ने विश्वामित्र से कहा—"लड़के को आँख की ओट करो। यह बालक देखने में छोटा लेकिन मन का खोटा है!"

लक्ष्मण ने हंस दिया—"आँखें बंद करलो आप ही अंधेरा छा जायगा। चिराग गुल, पगड़ी गायब हो जायेगी।"

अब तो परशुराम के क्रोध की सीमा न रही। राम से कहा—"धनुष भी तोड़ा और मेरी हंसी करवा रहा है। तूने छोटे भाई को सिखा पढ़ा रक्खा है, तब ही वह मेरे साथ ऐसी

ढिठाई कर रहा है। अब या तो मेरे साथ युद्ध कर या राम कहलाना छोड़ दे। आजा! युद्ध को तत्पर होजा! नहीं तो दोनों को अभी मार दूंगा।"

परशुराम ने परसे को उठाया। राम की ओर झुके। राम ने हृदय में हँसते हुए अपना सर नीचा कर लिया। "क्या अन्धेर है? अपराध लक्ष्मण का और मार धार मुझ पर हो! सच है इस संसार में सीधापन भी बहुत बड़ा दोष है। टेढ़े से कोई नहीं उलझता और सीधे के सर चढ़ता है। सीधे का मुँह कुत्ता भी चाटता है।"

"लो भगवन्! यह मेरा सर है जो आपके चरणों में झुका हुआ है। परसा उठाइये, उसे बतार कर रख दीजिये। किसी प्रकार तो आपका क्रोध जाये! मैं तो आपका मन, कर्म, वाणी से सेवक बना हुआ हूं। मन, कर्म, वाणी के साथ सर भी सामने झुका हुआ है। काटिये और अपने हृदय को शीतल कीजिये।"

"सेवक स्वामी में लड़ाई कैसी! और मेरा भाई भी निरअपराधी है। न आप वीर भेष में आते न वह खिल्ली उड़ाता। आप धनुष बाण और कुल्हाड़ी लिए हुए आये, इसने समझा कोई लड़ाका आ गया और उसके मुंह से अनाप शनाप बातें निकलने लगीं। वंश स्वभाव को वह कहां ले जाकर फेंके! आप साधू के भेष में आये होते तो वह और प्रकार का व्यौहार करता। आपके चरणों की धूली माथे पर लगाता।"

"हम आप से क्यों लड़ें! कहाँ सर कहां पाँव! लड़के का अपराध क्षमा कीजिये। आप में दया और करुणा होनी चाहिये।"

"आपका नाम बड़ा है, मेरा छोटा है। मैं केवल राम हूं

आप परशुराम हैं। मुझ में साधारण धनुष धारी होने का एक गुण है, आप में लाखों गुण हैं। मैं सब प्रकार आप से हारा हुआ हूँ। आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिये।"

परशुराम क्रोध की हँसी हँसते हुए बोले—"तू भी अपने भाई के समान टेढ़ा है। जैसा वह वैसा तू! तूने मुझे साधारण ब्राह्मण समझ रक्खा है। मैं जैसा ब्राह्मण हूँ तुझे सुनाता हूं। यज्ञ करना, कराना, वेद पढ़ना, पढ़ाना, दान देना, दिलाना ब्राह्मणों का मुख्य धर्म है। इसी को षट कर्म कहते हैं।"

"मैं यज्ञ करता हूँ। मेरा धनुष चमचा है जिससे बाण की आहुती देता हूँ। मेरा क्रोध वेदी की प्रचंड अग्नि है। चारों प्रकार की सेना इस यज्ञ की लकड़ियाँ हैं और राजे महाराजे पशु हैं जिनका बल दिया जाता है। करोड़ों ऐसे यज्ञ मैंने किये और ब्राह्मणों से करवाये। मेरा वेद क्षत्रियों का नाश करना करवाना है। यही मेरा ज्ञान है। जिन उपायों से मैं इनके समूह का विध्वंश करता कराता हूँ, वही इस वेद के मंत्र हैं। मैं ऐसा ही वेद पढ़ता पढ़ाता हूँ।"

"क्षत्रियों का राजपाट छीनकर ब्राह्मणों को देना मेरा दान है। मैं ऐसा ही दान देता, दिलवाता हूँ। मैंने सारी आयु यही षट कर्म किये हैं। तूने धनुष को क्या तोड़ा सारे जगत् को अपने विचार से जीत लिया। अभिमान आगया।"

राम ने कहा—"भगवन्! किंचित् मात्र अपराध और इतना बड़ा दण्ड! सोचिये तो सही! पुराना धनुष छूते ही टूट गया। इसमें मेरा क्या दोष था! आप मुझे लड़ने के लिए बार बार ललकारते हैं। मैं क्षत्री हूं। क्षत्री कुल में जन्म लेकर लड़ाई भिड़ाई से मुँह मोड़ना माथे पर कलंक का टीका लगाना है। शत्रु चाहे कैसा ही बलवान हो, वह काल और मृत्यु

ही क्यों न हो, जब हमको युद्ध के लिये ललकारेगा, हम प्रसन्न होकर उसका सामना करेंगे। आप मुझे क्या डराते हैं! मैं ब्राह्मणों का सन्मान करता हूं। यह मर्यादा है। आप लड़ने पर उतर आये तो आइये मुझे डर नहीं है। इसे भी देख लीजिए। यहां कोई असमंजस नहीं है।"

परशुराम ने जब राम की अन्तिम वाँणी सुनी उनके हृदय के नैन खुल गये। महा आश्चर्य्य हुआ। आज तक इस साहस का कोई राजपूत उनके सामने नहीं आया था। कोमल वाणी में कहा—"मेरे धनुष का चिल्ला चढ़ा दीजिए ताकि मेरा संदेह मिटे।"

राम ने अपने दाहिने हाथ की एक उँगली से परशुराम के धनुष को छू दिया। तांत खिंच गई। तड़ाखे का शब्द हुआ, जिसे सुन कर सब डर गये। परशुराम को महा आश्चर्य हुआ। हाथ जोड़ कर राम को नमस्कार किया।

जै अगुण, गुण, निर्गुण, सगुण, गुण रूप गुणकारी प्रभो।
वैराग, राग, सुराग, रागातीत हितकारी प्रभो॥
नहिं वेद महिमा तेरी जाने, अजर अमर विशेश्वरम्।
जै अगम अलख अकाम जै जे, जगत धर धरणी धरम्॥
अज्ञान माया भ्रम में, फँस तुझको पहिचाना नहीं।
अनजान पन में हांके बेवस, रूप को जाना नहीं॥
अपराध कीजै क्षमा मेरा, आप करुणासिन्धु हो।
जय राम लक्ष्मण अवधपति सुत, जै प्रभो जै जै प्रभो॥

परशुराम ने स्तुति और नमस्कार करने के पश्चात् वन का रास्ता लिया। किसी ने नहीं जाना कहाँ से आये थे किधर को गये। क्या हुए और क्या नहीं हुए!

सातवां समुल्लास

राम और विश्वामित्र का अन्तिम संवाद

परशुराम के अन्तर ध्यान होते ही सब सुखी हुए। सातों प्रकार के बाजे, घण्टा, शङ्ख, पखावज, मृदंग, बाँसरी, सारंगी और बीणा बजने लगे।

जनक विश्वामित्र के पांव पड़ा। "आपने संसार में मेरी लाज रखली। मैं तो निराश होचुका था। संता के लिए अधिकारी वर की प्राप्ति महा कठिन थी।"

विश्वामित्र—"प्रकृति बिना पुरुष के रह नहीं सकती, यह नियम है। लाज रखने वाला कोई और ही है। मुझे उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वयंवर हो चुका। जयमाला के गले पड़ते ही सीता का व्याह राम के साथ होगया। राम का सम्बन्ध मेरे साथ बस इतना ही था। अब आप दशरथ को बुलवा लीजिए। बारात आये और कुल रीति, देश रीति और वेद रीति के अनुसार राजकुमारों का व्याह कीजिए और करवाइए। मर्यादा भंग न हो और मुझे आज्ञा दीजिए। मैं राजकुमारों को आपके पास छोड़ कर अपने आश्रम को जाऊँ।"

जनक की रानियां और सीता विश्वामित्र के पांव पड़ी। सब ने उनका उपकार माना और वह राम लक्ष्मण को साथ लिये हुए अतिथीशाला में आये। जितने राजे महाराजे आये हुए थे वह भी विदा हो हो कर अपने घरों को चले गये।

निवास स्थान में आकर राम ने विश्वामित्र से पूछा—'भगवन्! परशुराम क्यों आये और क्यों चले गये? वह कौन थे?"

विश्वामित्र हँसे – 'तुम जान जान कर अनजान होते हो। यह परशुराम भी ब्रह्म के अवतार हैं। मेरा इनका सम्बन्ध है। पिण्डों के बदलने से वह ब्राह्मण होगये और मैं क्षत्री के घर उत्पन्न हुआ। परशुराम को क्षत्री और मुझे ब्राह्मण होना था। पांसा उलटा पड़ा लेकिन फिर भी कुछ न कुछ तो परिणाम हुआ।

वह ब्राह्मण होते हुए क्षत्री हैं और मैं क्षत्री होते हुए ब्राह्मण हूँ। गुण कर्म और स्वभाव ने यहां और प्रकार का रूप धारण किया।"

राम—'यह कैसी कथा है ?"

विश्वामित्र—"जब कभी अवसर मिले तो यह बात वशिष्ठ से पूछना। वह यह रहस्य तुमको बता देंगे और जो बात तुम्हें पूछनी हो पूछो मैं समझा दूँगा।"

राम—"अवतार क्या है ? यह परशुराम कैसे अवतार हैं ? आप बार बार कह चुके हैं कि मैं ब्रह्म का अवतार हूँ। यह क्या बात है ?"

विश्वामित्र—"यहां सारे के सारे जीव जन्तु किसी न किसी काम के लिए प्रकट हुए हैं। बेकाम कोई भी नहीं है। भेद केवल यह है कि किसी का काम छोटा है किसी का बड़ा है और सब में ब्रह्म की सत्ता रहती है। जिसका काम बड़ा है और जिसमें ब्रह्म सत्ता विशेषता और अधिकता के साथ है, वह ब्रह्म का अवतार कहलाता है। ब्रह्म की अधिक सत्ता का जिसमें किसी विशेषता के साथ उतार हो वह अवतार है। तुम में ब्रह्म बल, ब्रह्म तेज और ब्रह्म शक्ति अधिकता के साथ प्रतीत होती है इसलिए औरों को तो कोई अवतार नहीं कहता, तुमको अवतार कहा जाता है।"

राम—"तब तो सारे जीव जन्तु अवतार ही हुए क्योंकि ब्रह्म सत्ता सब में है।"

विश्वामित्र—"बात तो तुम सच कहते हो। ब्रह्म सत्ता के बिना कोई भी न रह सकता है, न ठहर सकता है। सब में ब्रह्म सत्ता का उतार है, इसमें नाम के लिए भी संदेह नहीं है लेकिन वह अवतार नहीं कहलाते। मनुष्य मनुष्य सब एक हैं लेकिन सारे मनुष्य राजा नहीं होते।"

राम—"यह तो सच है। समुद्र की शक्ति एक एक बूँद में, सूरज का प्राण एक एक प्राण धारियों में, पृथ्वी का गुण सारे पृथ्वी तत्त्व से बने हुओं में होता है। यह बताइये मैं ब्रह्म अवतार हूं तो मेरा काम क्या है।"

विश्वामित्र—"एक ने नाई से पूछा - 'मेरे कितने बाल हैं?" उसने कहा, धैर्य धरो! अभी सामने काट कर गिराये देता हूं। यह काम आप तुम्हारे सामने आयगा। मैं कुछ नहीं कह सकता।'

राम—"फिर आपने कैसे जाना कि मैं ब्रह्म का अवतार हूं?"

विश्वामित्र—"किसी की बुद्धि देखकर यह कहा जाता है कि वह बुद्धिमान् हैं। तुम्हारी विलक्षणता और विशेषता का लक्षण बता रहा है कि तुम असाधारण पुरुष हो।"

राम—"फिर भी कुछ कह दीजिए।"

विश्वामित्र—"जब जब संसार में धर्म की हानि होती है तब तब ब्रह्म के अवतार आकर उस हानि को दूर कर देते हैं।"

राम—"धर्म क्या है?"

विश्वामित्र—"धरी (धारणा) म(मन)। मन की धारणा शक्ति 'धर्म' कहलाती है। यह प्राकृतिक नियम है जिस पर संसार का प्रबन्ध निर्भर है। कोई ऐसे प्राणी कभी कभी उत्पन्न होजाते हैं, जो इसे धक्का पहुँचाते हैं और प्रबन्ध बिड़गने लगता है। तब कोई विलक्षण पुरुष आकर उस विघ्न को हटा देता है।

इसी को अवतार कहते हैं।"

आठवाँ समुल्लास

राम का विवाह

स्वयंवर के दूसरे दिन जनक ने दशरथ के पास अपने कर्मचारियों को भेजा। जो कुछ हुआ था कहला भेजा। दशरथ, भरत शत्रुघ्न, वशिष्ठ, वामदेव, सुमन्त इत्यादि को लेकर आये और शुभ लग्न, शुभ दिन, शुभ महूर्त में ऋषियों ने वेद, कुल और देश रीति के अनुसार राम का विवाह सीता के साथ करा दिया। इस प्रसंग को विस्तार के साथ न सुनाना चाहते हैं न हम सुना सकते हैं न इसकी बहुत आवश्यकता ही है। इतना ही कहना बहुत है कि राम का सीता के साथ विवाह होगया और उसी दिन उनके और भाई भी ब्याहे गये। लड़कों के विवाह हो जाने पर दशरथ पुत्र और पुत्र बधुओं को लेकर अयोध्या में आये। वह संसारी और संसार बद्ध पुरुष थे। उनके आनन्द की सीमा संतति की वृद्धि और उन्नति ही तक थी। वह मनमें बहुत प्रसन्न और सुखी हुये। नगर में बधाई फिरी। सारी प्रजा ने इस सुसमाचार को सुन कर उत्सव मनाया और कुछ दिनों के लिए अयोध्या स्वर्ग-भूमि के समान बन गई।

राजकुमार अपने अपने महलों में रहने लगे। लक्ष्मण ने किसी विशेष कारण से कुछ दिनों के लिए ब्रह्मचर्य के पालन को चित्त दिया।

महारामायणम् पहला आरम्भ खण्ड का तीसरा भाग

समाप्तम्॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]